श्रीगणेशाय नमः ।

चाणक्यनीति दर्पणः ।



प्रणम्यशिरसाविष्णुं त्रैलोक्याधिपतिंप्रभुम् ।
नानाशास्त्रोद्धृतंवक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम् ॥१॥

दोहा—सुमति बढ़ावन सरब जन, पावन नीति प्रकाश ।
टीका चाणक नीतिकर, भनत भवानी दास ॥ १ ॥

तीनों लोक के पालन करने वाले सर्व शक्तिमान विष्णुको शिर से प्रणाम करके अनेक शास्त्रों में से निकाल कर राज नीति समुच्चय नामक ग्रन्थ को रचत हूँ ॥ १ ॥

अधीत्येयं यथाशास्त्रं नरो जानाति सत्तमः ।
धर्मोपदेशविख्यातं कार्याकार्यशुभाशुभम् ॥ २ ॥

दोहा—तत्व सहित पढ़ि शास्त्र यह, नर जानत सब बात ।
काज अकाज शुभाशुभहि, धरम रीति विख्यात ॥ २ ॥

जो इसको विधिवत पढ़कर धर्म शास्त्र में प्रसिद्ध शुभ और अशुभ कार्य्य को जानता है वह अति उत्तम गिना जाता है ॥२॥

तदहं संप्रवक्ष्यामि लोकानां हित काम्यया ।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते ॥ ३ ॥

दोहा-मैं सोइ अब बरनन करूँ, अति हित कारक अज्ञ ।
जाके जानत होत जन, सर्बहिं विधि सर्वज्ञ ॥ ३ ॥

मैं लोगों के हितकी इच्छा से इसको कहूंगा जिसके ज्ञान मात्र से सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है ॥ ३ ॥

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्ट स्त्री भरणेन च ।
दुःखितैः संप्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति ॥४॥

दोहा-उपदेशत शिष मूढ़ कहँ, व्यभिचारिणी ढिग बास ।
अरिको करत विश्वास उर, विदुखहु लहत बिनास ॥ ४ ॥

निर्बुद्धि शिष्य को पढ़ाने से, दुष्ट स्त्री के पोषण से, दुःखियों के साथ व्यवहार करने से पण्डित जन भी दुःख पाता है ॥४॥

दुष्टाभार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः ।
ससर्पे च गृहवासो मृत्युरेव न संशयः ॥ ५ ॥

दोहा-भामिनिदुष्टा मित्र शठ, प्रति उत्तरदा भृत्य ।
अहि युत बसन अगार में, सब विधि मरिबो सत्य ॥ ५ ॥

दुष्ट स्त्री, शठ मित्र, उत्तर देने वाला दास और सांपवाले घर में वास ये मृत्यु स्वरूपही है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ५ ॥

आपदर्थे धनंरक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपिधनैरपि ॥ ६ ॥

दोहा-धन गहि राखहु विपति हित, धनते बनिता धीर ।
तजि बनिता धनकूं तुरत, सबते राखहु शरीर ॥ ६ ॥

आपत्ति निवारण करने के लिये धनको बचाना चाहिये, धन से स्त्री की रक्षा करना चाहिये सबकाल में स्त्री और धनों से भी अपनी रक्षा करना उचित है ॥ ६ ॥

आपदर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमतश्च किमापदः ।
कदाचिच्चलिता लक्ष्मीः संचितोऽपि विनश्यति ॥७॥

दोहा—आपद हित धन राखिये, धनिहिं आपदा कन
संचित हूँ नशि जात है, जो लक्ष्मी करु गौन ॥ ७ ॥

विपत्ति निवारण करने के लिये धनकी रक्षा करना उचित है । क्या श्रीमानों को भी आपत्ति आती है ? हां कदाचित् दैवयोग से लक्ष्मी भी चली जाती है उस समय संचित भी नष्ट हो जाता है ॥७॥

यस्मिन्देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवः ।
न च विद्यागमोऽप्यस्ति वासंतत्र न कारयेत् ॥८॥

दोहा—जहां न आदर जीविका, नहिं प्रिय बन्धु निवास ।
नहिं विद्या जेहि देश में, बसहु न दिन इक बास ॥ ८ ॥

जिस देश में न आदर न जीविका न बन्धु और न विद्या का लाभ हो वहां वास नहिं करना चाहिये ॥ ८ ॥

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ॥९॥

दोहा—धनिक वेद प्रिय भूप अरु, नदी वैद्य पुनि सोय
बसहुँ नाहिं इक दिवस तहँ, जहँ यह पंच न होय ॥ ९ ॥

धनिक, वेदका ज्ञाता ब्राह्मण राजा नदी और वैद्य ये पांच जहां विद्यमान न हों तहाँ एकदिन भी वास नहीं करना चाहिये ॥ ९ ॥

लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता ।
पञ्चयत्र न विद्यन्ते न कुर्य्यात्तत्र संगतिम् ॥१०॥

दोहा–दान दच्छता लाज भय, यात्रा लोगन जान ।
पाँच नहीं जहँ पेषिये, तहाँ न बसहु सुजान ॥ १० ॥

जीविका, भय, लज्जा, कुशलता देने की प्रकृति जहाँ पर ये नहीं वहां के लोगों के साथ संगति करना न चाहिये ॥ १० ॥

जानीयातप्रेषणे भृत्यान् वान्धवान् व्यसनागमे ।
मित्रंचापत्तिकालेतु भार्या च विभवक्षये ॥ ११ ॥

दोहा–काज चलाए पर खरच; बन्धु परख दुख होय ।
मित्र परखियतु विपतिमें, विभव विनाशित जोय ॥ ११ ॥

काम में लगाने पर सेवकों को दुःख आनेपर बान्धवों की विपत्ति कालमें मित्र की और विभवके नाश होने पर स्त्रीकी परिक्षा होती है॥

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रु संकटे ।
राजद्वारे श्मशाने च यः तिष्ठति सबान्धवः ॥१२॥

दोहा–दुख आतुर दुरभिक्ष में, अरि जब कलह अभंग ।
भूपति भौन मशान में; बन्धु सोइ रहे संग ॥ १२ ॥

आतुर होनेपर, दुख होनेपर, काल पढ़नेपर वैरियों से संकट आनेपर, राजाके समीप और श्मशानपर जो साथ रहता है वही बन्धु है ॥१२॥

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिसेवते ।
ध्रुवाणितस्यनश्यन्ति अध्रुवंनष्टमेवहि ॥ १३ ॥

दोहा–ध्रुवकूं तजि अध्रुव गहै, चितमें अति सुख चाहि ।
ध्रुव तिनके नाशत तुरत, अध्रुव नष्ट है जाहि ॥ १३ ॥

जो निश्चित वस्तुओंको छोड़कर अनिश्चित की सेवा करता है उसके निश्चित वस्तुओंका नाश हो जाता है अनिश्चित तो नष्टही है ॥१३॥

वरयेत्कुलजांप्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम् ।
रूपशीला न नीचस्य बिवाह सदृशे कुले ॥१४॥

दोहा-कुल जातिय विरूप दोउ, चतुर वर करि चाह ।
रूपवती तोउ नीच तजि, समकुल करय बिवाह ॥ १४ ॥

बुद्धिमान् उत्तम कुलकी कन्या कुरूपा भी हो उसे वरै नीच कुलकी सुन्दरी हो तौ भी उसको नहीं इस कारण कि बिवाह तुल्य कुलमें बिहित है । १७॥

नदीनां शस्त्र पाणिनां नखिनां शृङ्गिणां तथा ।
विश्वासोनैव कर्तव्यः स्त्री षु राजकुलेषु च ॥१५॥

दोहा-सरिता श्रृङ्गी शस्त्र अरु, सक्त जितने नखवन्त ।
तियको नृपकुलको तथा, करहिं बिसास न मिन्त ॥ १५ ॥

नदियोंका शस्त्रधारियों का नखवाले और सींग वाले जन्तुओंका स्त्रियों में और राजकुल पर बिश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम् ।
नीचादप्युत्तमांविद्या स्त्री रत्न दुष्कुलादपि ॥१६॥

दोहा-गहहु सुधा बिषते कनक, मलतैं बहुकरि यत्न ।
नीचहुते विद्या बिमल, दुःकुलतैं तियरत्न ॥ १६ ॥

विषमें से भी अमृतको, अशुद्धपदार्थों में से सोनेको, नीचसे भी उत्तम विद्याको और दुष्ट कुलसे भी स्त्री रत्नको लेना योग्य है ॥१६॥

स्त्रीणां द्विगुणं आहारो लज्जाचापि चतुर्गुणा ।
साहसं षड्गुणंचैव कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥१७॥

दोहा—तिय अहार देखिय द्विगुण, लाज चतुरगुन जान ।
षट्गुन तेहि व्यवसाय तिय, कामअष्ट गुणमान ॥ १७ ॥

पुरुष से स्त्रियों का अहार दूना, लज्जा चौगुनी, साहस छः गुना और काम अटगुना अधिक होता है ॥ १७ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

—:***:—

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ।
अशौचत्वं निर्दयत्वं स्त्रीणां दोषाःस्वभावजाः ॥१॥

दोहा-अनृत शीघ्रता मूढ़ता, कपटरु कृतघनताइ ।
निरदयतारु मलीनता, तियमें सहज रहाइ ॥ १ ॥

असत्य बोलना बिनाबिचारे किसी काममें झटपट लगजाना छलमूर्खता लोभ अपवित्रता और निर्दयता ये स्त्रियोंके स्वभाविक दोष है ॥१॥

भोज्यं भोजन शक्तिश्च रतिशक्तिर्वरांगना ।
विभवो दान शक्तिश्च नाल्पस्यतपसः फलम् ॥२॥

दोहा-भोजन भोजन शक्तिरति, शक्ति सदा बर नारि ।
बिभव दानकी शक्ति यह, बड़ तपफल सुखकारि ॥ २ ॥

भोजनके योग्यपदार्थ और भोजनकी शक्तिरतिकी शक्तिसुन्दरस्त्री ऐश्वर्य और दानशक्ति इनका होना थोड़े तपका फल नहीं है ॥ २ ॥

यस्यपुत्रोवशी भूतो भार्या छन्दानुगामिनी ।
विभवे यश्चसन्तुष्टस्तस्य स्वर्गइहैवहि ॥ ३ ॥

दोहा-सुत आज्ञाकारी जिन्हहिं, अनुगामिनि तिय जान ।
बिभव अलप संतोष तेहि, सुरपुर इहां पिछान ॥३॥

जिसका पुत्रवशमें रहता है और स्त्री इच्छाके अनुसार चलती है और जो अल्प बिभव में संतोष रखता है उसको स्वर्ग यहींही है ॥ ३ ॥

ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः सपिता यस्तुपोषकः ।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः साभार्यायत्रनिर्वृतिः ॥४॥

दोहा-ते सुत जे पितु भक्तिरत, हितकारक पितु होय ।
जेहि बिश्वास सोइ मित्र वर, सुखदायक तियसोय ॥ ४ ॥

वही पुत्र है जो पिताका भक्तहै, वही पिता है जो पालन करता है, वही मित्र है जिसपर विश्वास है, वही स्त्री है जिससे सुख प्राप्त हो ॥४॥

परोक्षेकार्य्यहन्तारं प्रत्यक्षेप्रियवादिनम् ।
वर्ज्जयेत्तादृशंमित्रं विषकुम्भम्पयोमुखम् ॥ ५ ॥

दोहा-कारज हनत परोक्ष में. प्रिय बच मिलत विशेष ।
तेहि मित्रन कूं दुर तज, बिष घट पय मुख पेष ॥ ५ ॥

आंख के ओट होने पर काम बिगाड़े सन्मुख होनेपर मीठीरबातें बनाकर कहे ऐसे मित्रको मूँहड़े पर दूधसे और सब विषसे भरे घड़ेके समान छोड़ देना चाहिये ॥ ५ ॥

न विश्सेत्कुमित्रे च मित्रेचापि न विश्वसेत् ।
कदाचित्कुपितंमित्रं सर्वगुह्यंप्रकाशयेत् ॥ ६ ॥

दोहा-नहिं विश्वास कुमित्र कर, कीजिय मित्तहु कौन ।
कहहि मित्त कहु कोपकरि, गोपहु सब दुख भौन ॥ ६ ॥

कुमित्र पर भी विश्वास तो किसी प्रकार से नहीं करना चाहिये

और सुमित्र परभी बिश्वास न रक्खे इस कारण कि कदाचित् मित्र रुष्ट हो जावे तो सब गुप्त बातों को प्रगट कर देवे ॥ ६ ॥

मनसाचिन्तितं कार्यं वचसा न प्रकाशयेत् ।
मंत्रेण रक्षयेद् गूढं कार्य्यं चापि नियोजयेत् ॥७॥

दोहा-मनतै चिंतित काज जो, वैनन तै कहियैन।
मंत्र गूढ़ राखिय कहिय, दोष काज मुख दैन ॥ ७ ॥

मनसे सोचे हुये कामको बचन से प्रकाश न करै किन्तु मंत्रणासे उसकी रक्षा करे और गुप्तही उस कार्य को काम में भी लावै ॥ ७ ॥

कष्टञ्चखलुमूर्खत्वं कष्टंच खलुयौवनम् ।
कष्टातकष्टतरंचैव परगेहे च निवासनम् ॥८॥

दोहा-मूरखता अरु तरुणता, हैं दोउ दुखदाय ।
परघर वसिवो कष्ट अति, नीति कहत अस गाय ॥ ८ ॥

मूर्खता दुख देती है और युवापन भी दुःख देता है परन्तु दूसरे के गृह का वास तो बहुत ही दुख दायक होता है ॥ ८ ॥

शैलेशैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजेगजे ।
साधवो नहि सर्वत्र चन्दनं न वनेवने ॥ ९ ॥

दोहा-गिरि प्रति नहिं मानक गनिय, मौक्तिन प्रति गज माहिं ।
सभहि ठौर नहिं साधु जन, वनवन चंदन नाहिं ॥ ९ ॥

सब पर्वतों पर माणिक्य नहिं होता और मोती सब हाथिया में नहीं मिलता, साधु लोग सब स्थानमें नहीं मिलते सब बनमें चन्दन नहीं होता है ॥ ९ ॥

पुत्राश्च विविधैः शीलैर्नियोज्या सततं बुधैः ।
नीतिज्ञाः शीलसम्पन्ना भवन्ति कुलपूजिता ॥१० ।

दोहा—चातुरता सुत कूं सुपितु, सिखवत बारहिबार ।
नितिवंत बुधिवंत को, पूजत सब संसार ॥ १० ॥

बुद्धिमान लोग लड़कों को नाना भाँति की सुशीलता में लगावें इस कारण कि नीति जानने वाले यदि शीलवान हों तो कुल में पूजित होते हैं ॥ १० ॥

माता शत्रु पिता वैरी ये वालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बकोयथा ॥ ११ ॥

दोहा—तात मात अरि तुल्य ते, सुत न पढ़ावत नीच ।
सभा मध्य शोभत न सो, जिमि बक हंसन बीच ॥ ११ ॥

वह माता शत्रु और पिता वैरी है जिसने अपने बालक को न पढ़ाया इस कारण कि सभाके बीच वह नहीं शोभता जैसे हंसों के बीच बकुला ॥ ११ ॥

लालनाद् वहवो दोषास्ताडनाद् वहवोगुणा ।
तस्मात्पुत्रंचशिष्यंच ताडयेन्नतुलालयेत् ॥१२॥

दोहा—सुत लाखन में दोष बहु, गुण ताड़न ही माहि ।
तेहिते सुत अरु सिखनकूं ; ताड़िय लालिय नांहि ॥ १२ ॥

दुलारने से बहुत दोष होते हैं और दण्ड देने से बहुत गुण, इस हेतु पुत्र और शिष्य को दण्ड देना उचित है ॥ १२ ॥

श्लोकेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धाक्षरेणवा ।
अवंध्यं दिवसंकुर्याद्दानाध्ययनकर्मभि ॥ १३ ॥

दोहा-सीखत श्लोकहु अधरकै, पादहुँ अच्छर कोय ।
वृथा गमावत दिवस ना, शुभ चाहत निजसोय ॥ १३ ॥

श्लोक वा श्लोक के आधेको अथवा आधेमें से आधेका प्रतिदिन पढ़ना उचित है इस कारण कि दान, अध्ययन आदि कर्म से दिन सार्थक करना चाहिये ॥ १३ ॥

कांता वियोगः स्वजनापमानो ।
रणस्य शेषः कुनृपस्य सेवा ॥
दरिद्र भावो विषमा सभा च ।
विनाग्निमेते षट् प्रदहंति कायम् ॥१४॥

दोहा-युद्ध शेष प्यारी बिरह, दारिद बन्धु अपमान ।
दुष्ट राज खलकी सभा, दाहत बिनहि कृशान ॥ १४ ॥

स्त्रीका विरह, अपने जनोंसे अनादर, युद्ध करके बचा शत्रु कुत्सित राजाकी सेवा, दरिद्रता और अविवेकियोंकी सभा ये बिना आगही शरीर को जलाते हैं ॥ १४ ॥

नदी तीरे च ये वृक्षाः पर गेहेषु कामिनी ।
मंत्रिहीनाश्चराजनःशीघ्रंनश्यंत्यनसंशयम् ॥१५॥

दोहा-तरवर सरिता तीरपर, निपट निरंकुश नारि ।
नरपति हीन सलाह नित, बिनसत लगे न वारि ॥ १५ ॥

नदी के तीर के वृक्ष दूसरे के गृहमें जाने वाली स्त्री, मन्त्रि रहित राजा निश्चय है कि शीघ्रही नष्ट होजाते हैं ॥ १५ ॥

बलं विद्याच विप्राणां राज्ञां सैन्य बलं तथा ।
बलं वित्तञ्च वैश्यानां शूद्राणां परिचर्यिका ॥१६॥

दोहा–विद्या बल है विप्रको, राजा को बल सैन।
धन वैश्यन बल शूद्रको, सेवाही बल दैन ॥ १६ ॥

ब्राह्मणों का बल बिद्या है, वैसेही राजा का बल सेना, वैश्यों का बल धन और शूद्रों का बल सेवा है ॥ १६ ॥

निर्द्धनं पुरुषं वेश्या प्रजा भग्नं नृपंत्यजेत्।
खगावीत फलंवृक्षं भुंक्त्वाचाभ्यागतो गृहम्॥१७॥

दोहा–वेश्या निर्धन पुरुषको, प्रजा पराजित राय।
तजहि पखेरू निफल तरु, खाय अतिथि चलिजाय ॥ १७ ॥

वैश्या व्यभिचारिणी स्त्री निर्धन पुरुषको, प्रजा शक्तिहीन राजा को, पक्षी फल रहित वृक्षको और अभ्यागत भोजन करके घरको छोड़ देते हैं ॥ १७ ॥

गृहीत्वादक्षिणां विप्रास्त्यजन्ति यजमानकम्।
प्राप्तविद्या गुरुंशिष्यो दग्धारण्यन्मृगास्तथा॥१८॥

दोहा–लेइ दक्षिणा यजमानसों, तजिदें ब्राह्मण वर्ग।
पढ़ि शिष्य गुरु को तजहिं, हरिन दगध वन पर्व ॥ १८ ॥

ब्राह्मण दक्षिणा लेकर यजमान को त्याग देते हैं शिष्य विद्या प्राप्त होजाने पर गुरुको, वैसेही जरे हुये वनको मृग छोड़ देते हैं ॥ १८॥

दुराचारी दुराद्दृष्टिदुरावासी च दुर्जनः।
यन्मैत्री क्रियतेपुम्भिर्नरः शीघ्रंविनश्यति ॥१९॥

दोहा–पाप दृष्टिदुर्जन दुरा, चारि दुर्वस जोय।
जेहि नरसो मैत्री करत, अवस नष्ट सोइ होय ॥ १९ ॥

जिसका आचरण बुरा है, जिसकी दृष्टि पाप में रहती है, बुरे

स्थान में बसने वाला और दुर्जन पुरुषों की मैत्री जिसके साथ की जाती है वह नर शीघ्रही नष्ट हो जाता है ॥ १९ ॥

सम्माने शोभते प्रीति राज्ञिसेवा च शोभते ।
वाणिज्यंव्यहारेषु स्त्री दिव्या शोभतेगृहे ॥२०॥

दोहा—समसों सोहत मित्रता, नृप सेवा सुसोहात ।
बनियाई व्यवहार में, सुन्दरि भवन सुहात ॥ २० ॥

समान जन में प्रीति शोभती है और सेवा राजा की शोभती है व्यवहारों में बनियाई और घरमें दिव्य स्त्री शोभती है ॥ २० ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



अथ तृतीयोऽध्यायः ।

कस्यदोषः कुलेनास्ति व्याधिनाकेन पीडितः ।
व्यसनंकेन संप्राप्तं कस्यसौख्यं निरन्तरम् ॥ १ ॥

दोहा—केहि कुल में दूषण नहीं, व्याधिन काहि सताय ।
कष्ट न भोग्यो कौन जन, सुखी सदा कोउ नाय ॥ १ ॥

किसके कुल में दोष नहीं है, व्याधि ने किसे पीड़ित न किया किसको दुःख न मिला, किसको सदा सुखही में देखा ॥ १ ॥

आचरः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम् ।
सम्भ्रमःस्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ॥२॥

दोहा—कहत कुलहि आचार भल, भाषन देश बताय ।
आदर प्रीति जनावहिं, भोजन देहुं मुटाय ॥ २ ॥

आचार कुलको बतलाता है; बोली देशको जनाती है, आदर प्रीति को प्रकाश करती है, शरीर भोजन को जानता है ॥ २ ॥

सकुले योजयेत्कन्यां पुत्रं विद्यासु योजयेत् ।
व्यसने योजयेच्छत्रं मित्रं धर्मे नियोजयेत् ॥३॥

दोहा—कन्या व्याहिय उच्चकुल, पुत्रहिं शास्त्र पढ़ाय ।
शत्रुहिं दुख दीजे सदा, मित्रहिं धर्म सिखाय ॥ ३ ॥

कन्या को श्रेष्ठ कुलवाले वरको देना चाहिये पुत्रको विद्या में लगाना चाहिये शत्रुको दुख पहुँचाना उचित है और मित्रको धर्म का उपदेश करना चाहिये ॥ ३ ॥

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरंसर्पो न दुर्जनः ।
सर्पोदंशति कालेतु दुर्जनस्तु पदेपदे ॥ ४ ॥

दोहा—खलहु सर्प इन दहुन मैं, भला सर्प खल नाहिं ।
सर्प दसत है काल में, खलजन पदपद माहिं ॥ ४ ॥

दुर्जन और साँप इनमें साँप अच्छा दुर्जन नहीं इसी कारण की सांप काल आने पर काटता है खल तो पद पद में ॥ ४ ॥

एतदर्थं कुलीनां नृपाः कुर्वंति संग्रहम् ।
आदिमध्यावसानेषु न त्यजन्ति च ते नृपम् ॥५॥

दोहा—भूप कुलीनन्हको करै, संग्रह याही हेत ।
आदि मध्य औ अन्तमें, नृपहिं न ते तजि देत ॥ ५ ॥

राजा लोग कुलीन का संग्रह इस निमित्त करते हैं कि वे आदि अर्थात् उन्नति, मध्य अर्थात् साधारण और अन्त अर्थात् विपत्ति में राजा को नहीं छोड़ते ॥ ५ ॥

प्रलये भिन्न मर्यादा भवंति किल सागराः ।
सागरा भेदमिच्छन्तिप्रलयेऽपि न साधवः ॥६॥

दोहा—मर्यादा सागर तजे, प्रलय होने के काल।
उत साधू छोड़े नहीं, सदा आपनी चाल ॥ ६ ॥

समुद्र प्रलय के समय में अपनी मर्य्यादा को छोड़ देता है और सागर भेद की इच्छा भी रखते हैं परन्तु साधु लोग प्रलय होने पर भी अपनी मर्य्यादा को नहीं छोड़ते ॥ ६ ॥

मूर्खस्तु परिहर्त्तव्यं प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः ।
भिंद्यते वाक्य शूलेन अदृशंकंटकं यथा ॥ ७ ॥

दोहा—मूरखको तजि दीजिये, प्रगट द्विपद पशु जान ।
वचन शूल्यते वेधहीं, अंधहि कांट समान ॥ ७ ॥

मूर्ख से दूर रहना उचित है इस कारण कि देखने में वह मनुष्य है परन्तु यथार्थ में पशु हैं और वाक्य रूप काँटे वेधता है जैसे अन्धे को काँटा ॥ ७ ॥

रूप यौवन सम्पन्ना विशाल कुल सम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभंते निर्गन्धाइवकिंशुकाः ॥८॥

दोहा—संयुत जीवन रूपते, कहिय बड़े कुलीन ।
विद्या बिन शोभत जिम, पुहुँपरांध ते हीन ॥ ८ ॥

सुन्दरता तरुणता और बड़े कुलमें जन्म इनके रहते भी विद्या- हीन बिना गन्ध पलाश के फूल के समान नहीं शोभते हैं ॥ ८ ॥

कोकिलानां स्वरो रूपं नारी रूपं पतिव्रतम् ।
विद्यारूपं कुरूपाणां क्षमारूपं तपस्विनाम् ॥९॥

दोहा-रूप कोकिलन रव तियन, पतिव्रत रूप अनूप ।
विद्यारूप कुरूपको, क्षमा तपस्विन रूप ॥ ६ ॥

कोकिलों की शोभा स्वर है, स्त्रियों की शोभा पातिव्रत्य है। कुरूपों की शोभा विद्या है, तपस्वियों की शोभा क्षमा है ॥ ६ ॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामंजनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत् ॥१०॥

दोहा-कुलहित त्यागिय एककूं, गृहहु छांड़ि कुल ग्राम ।
जन पद हित ग्रामहित जिय, तन हित अवनि तमाम ॥ १० ॥

कुलके निमित्त एकको छोड़ देना चाहिये, ग्राम के हेतु कुल का त्याग करना उचित है, देशके अर्थ ग्राम को और अपने अर्थ पृथ्वी को अर्थात् सबको त्यागही उचित है ॥ १० ॥

उद्योगेनास्ति दारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम् ।
मौनेनकलहोनास्ति नास्तिजागरितेभयम् ॥११॥

दोहा-नहिं दारिद उद्योगपर, जपते पातक नाहिं ।
कलह रहे नहिं मौनमें, नहिं भय जागत माहिं ॥ ११ ॥

उपाय करने पर दरिद्रता नहीं रहती, जपने वालेको पाप नहीं रहता, मौन होनेसे कलह नहीं होता और जागने वालेके निकट भय नहीं आता ॥ ११ ॥

अतिरूपेण वै सीता अतिगर्वेण रावणः ।
अतिदानाद्बलिर्बद्धो ह्यतिसर्वत्र वर्जयेत् ॥ १२ ॥

दोहा-अति छबि सीता हरण भौ, नशि रावण अति गर्व ।
अतिहि दानते बलि बांधे, अति तजिये थल सर्व ॥ १२ ॥

अति सुन्दरता के कारण सीता हरि गई, अति गर्भसे रावण मारा गया, बहुत दान देकर बलिको बँधना पड़ा इस हेतु अति को सर्व स्थल में छोड़ देना चाहिये ॥ १२ ॥

को हि भारः समर्थनां किं दूरं व्यवसायिनाम् ।
को विदेश विद्यानां कः पर प्रियवादिनाम् ॥१३॥

दोहा—उद्योगिन कछु दूर नहिं, बलिहि न भार विशेष ।
प्रियवादिन अप्रिय नहीं, बुधहिं न कठिन विदेश ॥ १३ ॥

समर्थ को कौन वस्तु भारी है, काम में तत्पर रहने वाले को क्या दूर है, सुन्दर विद्या वालों को कौन विदेश है प्रिय वादियों को कौन है ॥ १३ ॥

एकेनापिसुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना ।
वासितम्तद्धनंसर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥ १४ ॥

दोहा—एक सुगंधित वृक्ष से, सब बन होत सुबास ।
जैसे कुल शोभित अहै, रहि सुपुत्र गुण रास ॥ १४ ॥

एक भी अच्छे वृक्षसे जिसमें सुन्दर फूल और सुगंध है उससे सब बन सुवासित हो जाता है जैसे सुपुत्र से कुल ॥ १४ ॥

एकेन शुष्क वृक्षेण दह्यमानेन वह्निना ।
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ॥ १५ ॥

दोहा—सूख जरत इक तरुहुते, जस लागत बन डाढ़ ।
कुलको दाहत होत है, तस कुपूतको बाढ़ ॥ १५ ॥

आगसे जरते हुये एकही सूखे वृक्ष से सब बन जर जाता है जैसे कुपुत्र से कुल ॥ १ ॥

एकेनापि सुपुत्रेण विद्या युक्तेन साधुना ।
आह्लादितं कुलं सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी ॥१६॥

सोरठा–एकहु सुत जो होय, विद्यायुत अरु साधु चित ।
आनन्दित कुल सोय, यथा चंद्रमासे निशा ॥१६॥

विद्यायुक्त भले एक भी सुपुत्र से सब कुल ऐसे आनन्दित होजाता है जैसे चन्द्रमा से रात्रि ॥१६॥

किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोक सन्ताप कारकैः ।
वरमेकः कुलालम्बी यत्र विश्राम्यते कुलम् ॥१७॥

दोहा–करन हार सन्ताप सुत, जनमें कहा अनेक
देइ कुलहिं विश्राम जो, श्रेष्ठ होय वरु एक ॥१७॥

शोक सन्ताप उत्पन्न करने वाले बहुत पुत्रों से कुलको क्या ? सहारा देनेवाला एकहा पुत्र श्रेष्ठ है जिसमें कुल विश्राम पाता है॥१७॥

लालयेत्पञ्चवर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्तेतु षोडशेवर्षे पुत्रं मित्रत्वमाचरेत् ॥१८॥

दोहा–पांच वर्षलौं लालिये, दशलौं ताड़न देइ ।
सुतहि सोलहे वर्ष में, मित्र सरित गनिलेइ ॥१८॥

पुत्र को पांचवर्ष तक दुलारे उपरान्त दशवर्ष पर्यन्त ताड़न करे सोलहवें वर्षके प्राप्त हांतेही पुत्रका मित्र समान आचरण करे। १८॥

उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे च भयावहे ।
असाधुजन संपर्के यः पलायति स जीवति ॥१९॥

दोहा–काल उपद्रव संग शठ, अन्य राज भय होय ।
तेहि थलते जो भागिहै, जीवत बचिहैं सोय ॥१९॥

उपद्रव उठने पर; शत्रु के आक्रमण करने पर, भयानक अकाल पड़ने पर और खल जन के संग होने पर जो भागता है वह जीता रहता है ॥१९॥

धर्मार्थ काम मोक्षेषु यस्यै कोऽपिन विद्यते ।
जन्मजन्मनि मर्त्येषु मरणंतस्य केवलम् ॥२०॥

दोहा–धरमादिक चहुं वरगमें, जो हिय एकन धार ।
जगत जननि तेहि नरनके, मरिवै होत अबार ॥२०॥

धर्म. अर्थ, काम, मोक्ष इनमें से जिसको कोइ न भया उनका मनुष्यों में जन्म होने का फल केवल मरनेही के तुल्य है ॥ २० ॥

मूर्खा यत्र पूज्यन्ते धान्यं यत्र सुसञ्चिमम् ।
दाम्पतेय कलहो नास्ति तत्रः श्री स्वयमागता ॥२१॥

दोहा–जहां अन्न संचित रहै, मूर्खमान नहिं पाव ।
दंपतिमें जहँ कलह नहिं, संपति आपुइ आव ॥२१॥

जहाँ मूर्ख नहीं पूजे जाते, जहां अन्न सञ्चित रहता है और जहां स्त्री पुरुषसे कलह नहींहोता वहां आपही लक्ष्मी विराजमान रहती है।

इति तृतियोऽध्याय ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

आयुः कर्मचवित्तञ्च विद्या निधनमेवच ।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैदेहिनः ॥१॥

सोरठा–आयुर्बल औ कर्म धन, विद्या अरु मरण ये ।
नीति कहत अस मम, गर्भहिमें लिखजात है ॥१॥

यह निश्चय है कि आयु, कर्म, धन, विद्या और मरण ये पांच जब जीव गर्भही में रहता है तभी लिख दिये जाते हैं ॥ १ ॥

साधुभ्यस्ते निवर्तन्ते पुत्रमित्राणि बान्धवाः ।
ये च तैः सहगंतार स्तद्धर्मात्सकृतंकुलम् ॥२॥

दोहा–बांधवजनमां सुत ये, रहत साधु प्रतिकूल ।
ताहि धर्म कुल सुकृत लहु, वो इनके अनुकूल ॥२॥

पुत्र, मित्र बन्धु ये साधु जनों से निवृत हो जाते हैं और जो उन का सङ्ग करते हैं उनके पुण्य से उनका कुल सुकृती हो जाता है ॥२॥

दर्शन ध्यानसंस्पर्शैं मत्सीकूर्की च पक्षिणी ।
शिशुम्पालयते नित्यं तथासज्जन संगतिः ॥३॥

दोहा–मच्छी पच्छिनी कच्छपी, दरस परस करि ध्यान ।
शिशु पालै नित तैसही, सज्जन संग प्रमान ॥ ३ ॥

मछली, कछुई और पक्षी ये दर्शन ध्यान और स्पर्श से बच्चाओं को सर्वदा पालती हैं वैसेही सज्जनों की संगति है ॥ ३ ॥

यावत्स्वर्थोह्ययंदेहो यावन्मृत्युश्च दूरतः ।
तावदात्महितंकुर्यात् प्राणान्तकिंकरिष्यति ॥४॥

दोहा–जोलों देह समर्थ है, जबलों मरिबो दूरि ।
तौलों आतम हित करै, प्राण अन्त सब धूरि ॥४॥

जबलों देह निरोग है और जब तक मृत्य दूर है तब तक अपना हित और पुण्यादि करना उचित है प्राण के अन्त हो जाने पर कोई क्या करेगा ॥ ४ ॥

कामधेनुगुणा विद्या ह्यकाले फलदायिनी ।
प्रवासे मातृसदृशी विद्या गुप्तं धनं स्मृतम् ॥५॥

दोहा-बिन औसरहु देत फल, कामधेनु सम नित्त ।
मातासी परदेशमें, विद्या संचित चित्त ॥ ५ ॥

विद्या में कामधेनु के समान गुण है इस कारण कि असमय में भी फल देती है विदेश में माता के समान है विद्या को गुप्त धन कहते हैं ॥५॥

एकोऽपि गुणवान् पुत्रा निर्गुणैश्चशतर्वरः ।
एकश्चन्द्रस्तमोहन्ति नचताराः सहस्रशः ॥६॥

दोहा-सौनिर्गुनिय से अधिक, एक पुत्र सुविचार ।
एक चंद्र तमको हरे, तारा नहीं हजार ॥६॥

एक भी गुणी पुत्र श्रेष्ठ है और सैकडों गुण रहितों से क्या ? एकही चंद्र अन्धकार को नाश कर देता है सहस्र तारे नहीं ॥६॥

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि तस्माज्जातमृतोवरः ।
मृतः सचाल्पदुःखाय यावज्जीवंजडोदहेत् ॥७॥

दोहा-मूर्ख चिरायुन से भला, जन्मत ही मरी जाय ।
मरे अल्प दुख होइ है, जिये सदा दुखदाय ॥७॥

मूर्ख पुत्र चिरंजीवी भी हो उसे उत्पन्न होते ही जो मरजाय तो वह श्रेष्ठ है क्योंकि मरा हुआ थोड़े ही दुःख का कारण होता है पर जड़ जब लों जीता है तब लों डाहता है ॥ ७ ॥

कुग्राम वासः कुलहीन सेवा
कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या

पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या ।
बिग्नानि षट् प्रदहन्ति कायम् ॥ ८ ॥

दोहा–घर कुगांव सुत मूढ़ तिय, कुल नीचनि सेवकाइ ।
कुभख सुता विधवा छवों, तन बिन अग्नि जराइ ॥ ८ ॥

कुग्राम में बास, नीच कुलकी सेवा, कुभोजन, कलही स्त्री मूर्ख पुत्र, विधवा कन्या ये छ बिना आग ही शरीर को जला देते हैं ॥८॥

किंतयाक्रियतेधेन्वा या न दोग्धी न गुर्विणी ।
कोऽर्थःपुत्रेणजातेन योनाविद्वान्न भक्तिमान् ॥६॥

दोहा–कहा होय तेहि धेनु जो, दूध न गाभिन होय ।
कौन अर्थ वहि सुत भये, पण्डित भक्त न जोय ॥ ६ ॥

उस गाय से क्या लाभ है जो न दूध देवे न गाभिन होवे और ऐसे पुत्र हुये से क्या लाभ जो न विद्वान् भया न भक्तिमान् ॥ ६ ॥

संसारताप दग्धानां त्रयो विश्रान्ति हेतवः ।
अपत्यं च कलत्रं च सतासंगतिरेव च ॥ १० ॥

सोरठा–यह तीने विश्राम, मोह तपन जगताप में ।
हरै घोर भवधाम, पुत्रनारि सतसंग पुनि ॥ १० ॥

संसार के तप से जलते हुए पुरुषों को बिश्राम के हेतु तीन हैं लड़का स्त्री और सज्जनों की संगति ॥ १० ॥

सकृज्जल्पन्तिराजानः सकृज्जल्पंतिपण्डिताः ।
सकृत्कन्याः प्रदीयंते त्रीण्येतानिसकृत्सकृत् ॥ ११ ॥

दोहा–भूपति औ पण्डित बचन, औ कन्या को दान ।
एकै एकै बार ये तीनों होत समान ॥ ११ ॥

राजा लोग एकही बार आज्ञा देते हैं पण्डित लोग एकही बात, बोलते हैं, कन्या एकही बार दान होती है ये तीनों बातें एकही बार होती हैं ॥ ११ ॥

एकाकिनातपोद्वाभ्यां पठनं गायनं त्रिभिः ।
चतुर्भिर्गमनं क्षेत्रं पंचभिर्बहुभीरणम् ॥ १२ ॥

दोहा-तप एकहि द्वै से पठन, गायन तीन पन्थ चारि ।
कृषी पांच रन बहुत मिल, अस कह शास्त्र विचारि ॥१२॥

अकेले से तप, दो से पढ़ना, तीन से गाना, चार से पन्थ चलना पांच से खेती और बहुतों से युद्ध भली भाँति से बनता है ॥ १२ ॥

सा भार्या या शुचिर्दक्षा सा भार्या या पतिव्रता ।
साभार्यायापतिप्रीता साभार्यासत्यवादिनी ॥ १३ ॥

दोहा-सत्य मधुर भाखे बचन, और चतुर शुचि होय ।
पति प्यारी और पतिव्रता, तिया जानिये सोय ॥ १३ ॥

वही भार्या है जो पवित्र और चतुर है, वही भार्या है जो पतिव्रता है, वही भार्या है जिसपर पतिकी प्रीति है, वही भार्या है जो सत्य बोलती है अर्थात् दान मान, पोषण पालन के योग्य है ॥ १३ ॥

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्यास्त्वबांधवा ।
मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्यादरिद्रता ॥ १४ ॥

दोहा-है अपुत्र का सून घर, बान्धव बिन दिशि सून ।
मूरख को हिय सून है, दारिद को सब सून ॥ १४ ॥

निपुत्री का घर सूना है, बन्धु रहित दिशा शून्य है मूर्ख का हृदय शून्य है और सर्व शून्य दारिद्रता है ॥ १४ ॥

अनभ्यासे विषं शास्त्रमजीर्णेभोजनं विषयम् ।
दरिद्रस्यविषंगोष्ठी वृद्धस्यतरुणी विषम् ॥१५॥

दोहा—भोजन विष है बिनु पचे, शास्त्र विना अभ्यास ।
सभा गरल सम रङ्कहिं, बूढ़िहिं तरुनि पास ॥ १५ ॥

बिना अभ्यास से शास्त्र विष हो जाता है, बिना पचे भोजन विष हो जाता है, दरिद्रों की गोष्ठी और वृद्ध को युवती स्त्री विष जान पड़ती है ॥ १५ ॥

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत् ।
त्यजेत्क्रोधमुखीम्भार्यान्निस्नेहान्बान्धवांस्त्यजेत् ॥१६॥

दोहा—दयारहित धर्महि तजै, औ गुरु विद्याहीन ।
क्रोध मुखी तिय प्रीति बिनु, बान्धव तजै प्रवीन ॥ १६ ॥

दयारहित धर्मको छोड़ देना चाहिये, विद्याहीन गुरुको त्यागना उचित है जिसके मुँह से क्रोध प्रगट होता हो ऐसी भार्या को अलग करना चाहिये और बिना प्रीति बान्धवों का त्यागना विहित है ॥१६॥

अध्वाजरा मनुष्याणां वाजिनां बंधनं जरा ।
अमैथुनं जरास्त्रीणां वस्त्राणामातपा जरा ॥१७॥

दोहा—पन्थ बुढ़ाई नरन की, हयन बंध इक धाम ।
जरा अमैथुन तियन कहँ, औ बस्त्रन का धाम ॥ १७ ॥

मनुष्यों का पंथ बुढ़ापा है घोड़े को बाँध रखना वृद्धता है, स्त्रियों का अमैथुन बुढ़ापा है, बस्त्रों को घाम वृद्धता है ॥१७॥

कःकालःकानिमित्राणि कोदेशः कोव्ययागमौ ।
कस्याहंकोचमशक्तिरितिचिन्त्यं मुहुर्मुहु ॥१८॥

दोहा-हौं केहिको का शक्ति मम, कौन काल अरुदेश ।
लाभ खर्च को मित्रको, चिंता करे हमेश ॥ १८ ॥

किस कालमें क्या करना चाहिये, मित्र कौन है यह सोचना चाहिये, इसी भांति देश कौन है, इसपर ध्यान देना चाहिये, लाभ देखना चाहिये इसी प्रकार से मुझे क्या शक्ति है यह बार बार बिचारना योग्य है ॥ १८ ॥

अग्निर्देवो द्विजातिनां मुनिनांहृदिदैवतम् ।
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां सर्वत्रसमदर्शिनाम् ॥ १६ ॥

दोहा-ब्राह्मण क्षत्री वैश्य को, अग्निदेवता और ।
मुनिजन हिय मूरति अबुध, समदर्शिन सब ठोर ॥१६॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनका देवता अग्नि है मुनियों के हृदय में देवता रहते हैं अल्पबुद्धियों को मूर्ति में और समदर्शियों को सब स्थान में देवता हैं ॥ १६ ॥ इतिचतुर्थोऽध्याय: ॥ ४ ॥

अथ पंचमोऽध्याय: ।

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणोगुरुः ।
पतिरेवगुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतोगुरुः ॥ १ ॥

दोहा-अभ्यागत सबको गुरु, नारि गुरू पति जान ।
द्विजन अग्नि गुरु चारि हूं, बरन विप्र गुरु मान ॥ १ ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यका गुरु अग्नि है और चारों वर्णों का गुरु ब्राह्मण है स्त्रियोंका गुरुपति ही है; अभ्यागत सबका गुरु है ॥ १ ॥

यथा चतुर्भिः कनक परीक्ष्यते
निघर्षणं छेदनं तापताडनै ।

तथा चतुर्भिः पुरुष परीक्ष्यते
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥ २ ॥

दोहा–आगितपाय असिकाटिपिटि, सुवरन लख बिधि चारि ।
त्याग शील गुण कर्मतिमि, चारिहि पुरुष बिचारि ॥ २ ॥

घिसना, काटना, तापना पीटना इन चार प्रकारों से जैसे सोना की परीक्षा की जाती है वैसेही दान शील गुण आचार इन चारों प्रकार से पुरुष की परीक्षा की जाती है ॥ २ ॥

तावद्भयेषु भेतव्यं यावद्भयमनागतम् ।
आगतंतुभयंवीक्ष्य प्रहर्तव्यमशङ्कया ॥ ३ ॥

दोहा–जोलौं भय आवै नहीं, तौलौं डरे बिचार ।
आये शंका छोड़िके, चहिये कीन्ह प्रहार ॥ ३ ॥

तब तकही भयों से डरना चाहिये जब तक भय नहीं आया हो आये हुये भयको देख प्रहार करना उचित है ॥ ३ ॥

एकोदर समुद्र भूता एक नक्षत्र जातकाः ।
न भवन्तिसमा शीले यथा वदरिकण्टकाः ॥४॥

दोहा–एकहि गर्भ नक्षत्रमें, जायमान यदि होय ।
नाहि शील सम होत है, वेर कांट सम दोय ॥ ४ ॥

एकहि गर्भ से उत्पन्न और एकही नक्षत्र में जायमान शील में समान नहीं होते जैसे वेर और उसके कांटे ॥ ४ ॥

निःस्पृहोनाधिकारीस्यान्नाकामोमण्डनप्रियः ।
नाविदग्ध प्रियंब्रूयात् स्पष्टवक्तानवञ्चकः ॥५॥

दोहा—नहिं निस्पृह अधिकार गह, भूषण निहकाम ।
नहिं अचतुर प्रिय बोल नहिं, वंचक साफ कलाम ॥ ५ ॥

जिसको किसी विषय की बांछा न होगी वह किसी विषय का अधिकारी नहीं होगा, जो कामी न होगा वह शरीर की शोभा करने वाली वस्तुओं में प्रीति नहीं रक्खेगा, जो चतुर न होगा वह प्रिय नहीं बोल सकेगा और स्पष्ट कहने वाला छली नहीं होगा ॥ ५ ॥

मूर्खाणांपण्डिताद्वेष्या अधनानांमहाधना ।
पराँगना कुलेस्त्रीणां सुभगानाचदुर्भगाः ॥६॥

दोहा—मूरख द्वेषी पण्डितहि, धनहो नहिं धनमान ।
परकीया स्वकियाहु को, विधवा सुभगा जान ॥ ६ ॥

मूर्ख पण्डितों से, दरिद्री धनियों से, व्यभिचारिणी कुलीन स्त्रियों से और विधवा सुहागिनियों से बुरा मानती हैं ॥ ६ ॥

आलस्योप गता विद्या परहस्ते गतंधनम् ।
अल्पबीजं हतं क्षेत्रं हतं सैन्यसनायकम् ॥ ७ ॥

दोहा—आलसते विद्या नशे, धन औरन के हाथ ।
अल्प बीजसे खेत अरु, दल दलपति बिनु साथ ॥ ७ ॥

आलस्यसे विद्या नष्ट हो जाती है, दूसरे के हाथ में जाने से धन निरर्थक होजाता है, बीजकी न्यूनता से खेत हत होजाता है, सेना पति के बिना मारी जाती है ॥ ७ ॥

अभ्यासाद्धर्यते विद्या कुलं शीलेन धार्यते ।
गुणेनज्ञायतेत्वार्यः कोपो नेत्रेण गम्यते ॥८॥

दोहा-कुल शीलहिते धारिये, बिद्या करि अभ्यास ।
गुणते जानहिं श्रेष्ठ कह, नयनहिं कोष निवास ॥ ८ ॥

अभ्यास से बिद्या, सुशीलता से कुल, गुणसे भला मनुष्य और नेत्रसे कोष ज्ञात होता है ॥ ८ ॥

वित्तेन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृदुनारक्ष्यते भूपः सद् स्त्रिरक्ष्यतेगृहम्॥६॥

दोहा-विद्या रक्षित योगते, मृदुतासे भूपाल ।
रक्षित गेह सुतीयते, धनते धरम विशाल ॥ ६ ॥

धन से धर्म की रक्षा होती है, यम नियम आदि योग से ज्ञान रक्षित होता है मृदुता से राजा की रक्षा होती है, भली स्त्री से घर की रक्षा होती है ॥ ६ ॥

अन्यथा वेद पाण्डित्यं शास्त्रमाचरमन्यथा ।
अन्यथावदतः शान्तंलोकाःक्लिश्यंतिचान्यथा॥

दोहा-वेद शास्त्र आचार औ, शान्तहुं और प्रकार ।
जो कहते लहते वृथा, लोग कलेश अपार ॥ १० ॥

वेद के पाण्डित्यको व्यर्थ प्रकाश करने वाला, शास्त्र और उसके आचारके विषयमें व्यर्थ विवाद करने वाला और शान्त पुरुष को अन्यथा कहने वाला व्यर्थही क्लेश उठाता है ॥ १० ॥

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलंदुर्गतिनाशनम् ।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी ११

सोरठा-दारिद्र नाशत दान, शील दुर्गतहिं नाशियत
बुद्धि नाश अज्ञान, भय नाशत है भावना ॥ ११ ॥

दान दरिद्र ताको नाश करता है सुशीलता दुर्गतिको दूरकर देती है, बुद्धि अज्ञानको नाश कर देती है भक्ति भयको नाशकरती है ॥ ११ ॥

नास्ति कामसमोव्याधिर्नास्तिमोहसमोरिपुः ।
नास्तिकोपसमोवह्निर्नास्तज्ञानात्परंसुखम् ॥ १२ ॥

सोरठा–व्याधि न काम समान, रिपु नहिं दूजो मोहसम ।
अग्नि कोपसो आन, नहीं ज्ञानसे सुखपरे ॥ १२ ॥

कामके समान दूसरा व्याधि नहीं है, अज्ञान के समान दूसरा वैरी नहीं है, क्रोध के समान दूसरी आग नहीं है ज्ञान से परे सुख नहीं है ॥ १२ ॥

जन्ममृत्युर्हियात्येको भुनक्त्येकः शुभाशुभम् ।
नरकेषु पतत्येक एकोयाति परांगतिम् ॥ १३ ॥

सोरठा–जन्म मृत्यु लहु एक, भोगै है इक शुभ अशुभ ।
नरक जात है एक, लहत एकही मुक्तिपद ॥ १३ ॥

यह निश्चय है कि एकही पुरुष जन्म मरण पाता है, सुख दुख एकही भोगता है, एकही नरकों में पड़ता है और एकही मोक्ष पाता है अर्थात् इन कामोंमें कोई कोईकी सहायता नहीं कर सकता १३

तृणं ब्रह्मविदः स्वर्गस्तृणं शूरस्य जीवितम् ।
जिताक्षस्य तृणं नारी निस्पृहस्य तृणंजगत् १४

दोहा–ब्रह्मज्ञानिहिं स्वग तृण, जितइन्द्रिय तृण नार ।
शूरहिं तृन है जीवनो, निस्पृह कहँ संसार ॥ १४ ॥

ब्रह्मज्ञानी को स्वर्ग तृण समान है, शूरको जीवन तृण है जिस ने इन्द्रियों को बश किया उसको स्त्री तृण के तुल्य जान पड़ती है निस्पृह को जगत तृण है ॥ १४ ॥

विद्या मित्र प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधंमित्रं धर्मोमित्रंमृतस्यच ॥ ॥१५॥

दोहा-विद्यामित्र विदेश में, घर तिय मीत सप्रीत ।
रोगिहिं औषध अरु मरे, धर्म होत है मीत ॥ १५ ॥

विदेश में विद्या मित्र होती है, गृह में भार्या मित्र है, रोगी का मित्र औषध है मरे हुए का मित्र धर्म है ॥ १५ ॥

वृथा वृष्टिस्समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम् ।
वृथा दानधनाढ्येषु वृथा दीपोदिवापिच ॥१६॥

दोहा-व्यर्थहिं वृष्टि समुद्र में, तृप्तहिं भोजनदान ।
धनिकहिं देनों व्यर्थ है, व्यर्थ दीप दिनमान ॥ १६ ॥

समुद्रों में वर्षा वृथा है और भोजन से तृप्त को भोजन निरर्थक है, दान धनी को देना व्यर्थ है और दिन में दीपक वृथा है ॥ १६ ॥

नास्तिमेघसमंतोयं नास्तिचात्मसमंबलम् ।
नास्तिचक्षुःसमंतेजो नास्तिधान्यसमंप्रियम् ॥१७॥

दोहा-दूजो जल नहिं मेघ सम, बल आतमहि समान ।
नहिं प्रकाश है नैनसम, प्रिय अनाजसम आन ॥ १७ ॥

मेघके जल के सामन दूसरा जल नहीं होता है अपने बल के समान दूसरे का बल नहीं इस कारण कि समय पर काम आता है, नेत्र के समान दूसरा प्रकाश मान करने वाला नहीं है और अन्नके सदृश दूसरा प्रिय पदार्थ नहीं है ॥ १७ ॥

अधना धनमिच्छंति वाचं चैव चतुष्पदः ।
मानवाःस्वर्गमिच्छंति मोक्ष मिच्छंतिदेवताः ॥१८॥

दोहा–अधनी धनको चाहते, औ पशु हीन वाचाल ।
नर चाहत हैं स्वर्ग को, सुरगण मुक्ति विशाल ॥ १८ ॥

धन हीन धन चाहते हैं, पशु बचन और मनुष्य स्वर्ग चाहते हैं, और देवता भक्ति की इच्छा रखते हैं ॥ १८ ॥

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ।
सत्येनवातिवायुश्च सर्वं सत्येप्रतिष्ठितम् ॥१९॥

दोहा–सत्यहि ते रवि तपत है सत्यहि पर भुवधार ।
बहैं पवनहू सत्य तें सत्यहि सब आधार ॥ १९ ॥

सत्यसे पृथ्वी स्थिर है और सत्य ही से सूर्य तपते हैं सत्य ही से वायु बहता है सब सत्यही में स्थिर है ॥

चलालक्ष्मीश्चलाः प्राणश्चलेजीवितमन्दिरे ।
चलाचलेसंसारे धर्मएकोहिनिश्चलः ॥ २० ।

दोहा–चले लक्ष्मी औ प्राणहु, और जीविका धाम ।
गेह चलाचल जगत में अचल धर्म अभिराम ॥ २० ॥

लक्ष्मी नित्य नहीं है प्राण जीवन और घर सभी स्थिर नहीं है यह निश्चय है कि इस चर अचर संसार में केवल धर्मही निश्चल है

नाराणांनापितो धूर्तः पक्षिणांचैव वायसः ।
चतुष्पदांशृगास्तु स्त्रीणांधूर्ताचमालिनी ॥२१॥

दोहा–नर में नाई धूर्त है, मालिन नारि लखाहिं ।
चौपायन में स्यार है, वायस पक्षिन माँहि ॥ २१ ॥

पुरुषों में नापित (नाई) और पक्षियों में कौवा वंचक होता है पशुओं में स्यार वंचक होता है और स्त्रियों में मालिन धूर्त है ॥२१॥

जनिताचोपनेताच यस्तुविद्यांप्रयच्छति ।
अन्न दाताभयंत्राता पञ्चैतेपितरः स्मृता ॥२२॥

दोहा-पितु आचारज अन्नप्रद, भयरक्षक जो कोय ।
विद्यादाता पांच यह, मनुज पिता सम होय ॥ २२ ॥

जन्माने वाला, यज्ञोपवीत आदि संस्कार करने वाला, जो विद्या देता है अन्न देने वाला, भयसे बचाने वाला ये पांच पिता गिनेजातेहैं॥२२॥

राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्रपत्नी तथैवच ।
पत्नीमातास्वमाता च पञ्चैतामातरः स्मृतः॥२३॥

दोहा-राजतिया औ गुरुतिया, मित्रतियाहु जान ।
निजमाता औ सासु ये, पांचों मातु समान ॥ २३ ॥

राजा की भार्या, गुरु की स्त्री, वैसेहीं मित्रकी पत्नी, सासु और अपनी जननी इन पांचों को माता कहते हैं ॥ २३ ॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ वृद्ध चाणक्ये षष्ठोऽध्यायः ।

श्रुत्वाधर्मविजानाति श्रुत्वात्यजतिदुर्मतिम् ।
श्रुत्वाज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वामोक्षवाप्नुयात ॥१॥

दोहा-सुनिके जानै धर्मको, सुनि दुर्बुद्धि तजि देत ।
सुनिके पावत ज्ञान, सुनैहुँ मोक्षपद लेत ॥ १ ॥

मनुष्य शास्त्र को सुनकर धर्म को जानताहै और शास्त्र सुनकर दुर्बुद्धि को छोड़ता है शास्त्र सुनकर ज्ञान पात है और शास्त्र सुनकर मोक्ष पाता है ॥ १ ॥

पक्षिणां काकचाण्डालः पशूनां चैव कुक्कुरः ।
मुनीनां पाप चाण्डलः सर्वचाण्डाल निन्दकः ॥२॥

दोहा—बायस पक्षिन पशुन महँ, श्वान अहै चंडाल ।
मुनियन में जेहि पाप उर, सबमें निंदक काल ॥ २ ॥

पक्षियों में कौवा और पशुओं में कुक्कुट चांडाल होता है मुनियों में चांडाल पाप और सब में चांडाल पर निन्दक है ॥ २ ॥

भस्मना शुध्यते कांस्य ताम्रमम्लेन शुध्यति ।
रजसा शुध्यते नारी नदीवेगेन शुध्यति ॥३॥

दोहा—कांस होत शुचि भस्म, ताम खटाई धोइ ।
रजोधर्मते नारि शुचि, नदी वेगि ते होइ ॥ ३ ॥

कांसे का पात्र राख से शुद्ध होता तांबेका पात्र इमली की खटाई से शुद्ध होजाता है, स्त्री रजस्वला होनेपर शुद्ध होजाती है और नदी धाराके वेगसे पवित्र होती है ॥ ३ ॥

भ्रमन्संपूज्यतेराजा भ्रमन्संपूज्यतेद्विजः ।
भ्रमन्संपूज्यते योगी स्त्रीभ्रमन्तीविनश्यति ॥४॥

दोहा—पूजि जात है भ्रमनसे, निज योगी औ भूप ।
भ्रमण किये नारी नसे, ऐसी नीति अनूप ॥ ४ ॥

भ्रमण करने वाला राजा आदर पाता है, घूमने वाला ब्राह्मण पूजा पाता है भ्रमण करने वाला योगी पूजित होता है परन्तु स्त्री घूमने से भ्रष्ट होजाती हैं ॥ ४ ॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्यबांधवाः ।
यस्यार्थाःसपुमाल्लोके यस्यार्था सचपण्डितः ॥५॥

दोहा-मित्र और हैं बन्धु तेहि, सोइ पुरुष गणजात।
धन है जाके पासमें, पंडित सोइ कहात॥ ५॥

जिसको धन रहता है उसको मित्र और जिसको सम्पत्ति रहती है उसको बांधव बहुत होते हैं। जिसको धन रहता वही पुरुष गिना जाता है और जिसको धन होता है वही पंडित कहलाता है॥ ५॥

तादृशी जा ते बुद्धिर्व्यवसायोपि तादृशः।
सहायास्तादृशोएव यादृशी भवितव्यता॥६॥

दोहा-तैसोई मति होत हैं, तैसोई व्यवसाय॥
होनहार जैसी रहै, तैसोई मिलत सहाय॥ ६॥

वैसीही बुद्धि वैसाही उपाय और वैसे ही सहायक मिलते हैं जैसा होनहार होता है॥ ६॥

कालः पचित भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
कालःसुप्तेषुसजागर्ति कालोहिदुरतिक्रमः॥७॥

दोहा-काल पचावत जीव सब, करत प्रजन संहार॥
सबके सोयउ जागियतु, काल टरै नहिं टार॥ ७॥

काल सब प्राणियों को खा जाता है और काल ही सब प्रजा को नाशकर देता है, सब पदार्थ के लय हो जाने पर काल जागता रहता है, कालको कोई नहीं टाल सकता॥ ७॥

नपश्यति च जन्मांधाः कामान्धो नव पश्यति।
मदोन्मतोनपश्यन्ति अर्थीदोषंनपश्यति॥ ८॥

दोहा-जन्म अन्ध देखै नहीं, काम अन्ध नहिं जान॥
तैसोई मदअन्ध है, अर्थी दोष न मान॥ ८॥

जन्मका अन्धा नहीं देखता काम से अन्धा हो रहा है उसको

सूझता नहीं मदोन्मत्त किसी को देखता नहीं और अधर्मी दोष नहीं देखता ॥ ८ ॥

स्वयंकर्मकरोत्यात्मा स्वयंतत्फलमश्नुते ।
स्वयंभ्रमतिसंसारे स्वयंतस्माद्विमुच्यते ॥९॥

दोहा—जीव कर्म आपै करै, भोगत फलहु आप ॥
आप भ्रमत संसार में, मुक्ति लहत है आप ॥ ९ ॥

जीव आपही कर्म करता है और उसका फल भी आप ही भोगता है । आपही संसारमें भ्रमता है और आपही उससे मुक्तभी हो जाता है

राजा राष्ट्र कृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः ।
भर्ता च स्त्री कृतंपापं शिष्य पापं गुरुस्तथा ॥१०॥

दोहा—प्रजापाप नृप भोगियत, प्रोहित नृप को पाप ॥
तिय पातक पति शिष्य को, गुरु भोगत है आप ॥ १० ॥

अपने राज्य में किये हुए पाप को राजा और राजा के पाप को पुरोहित भोगता है स्त्री कृत पाप को पति भोगता है वैसेही शिष्य कृत पापको गुरु भोगता है ॥१०॥

ऋण कर्ता पिताशत्रुर्माता च व्यभिचारिणी ।
भार्यारूपवती शत्रुः पुत्रःशत्रुरपण्डितः ॥११॥

दोहा—ऋण कर्ता पिता शत्रु पर, पुरुष गामिनी मात ॥
रूपवती तिय शत्रु है, पुत्र अपण्डित जान ॥ ११ ॥

ऋण करने वाला पिता, व्यभिचारिणी माता सुन्दरी स्त्री और मूर्ख पुत्र वैरी होते हैं ॥ ११ ॥

लुब्धमर्थेनगृह्णीयात् स्तब्धमंजलिकर्मणा ।
मूर्खंछन्दानुवृत्याच यथार्थत्वेनपंडितम् ॥१२॥

दोहा–धन से लोभी वश करै, गर्विहिं जोरि स्वपान ॥
मूरखके अनुसारि चले, बुधजन सत्य कहान ॥

लोभीको धनसे, अहंकारी को हाथ जोड़ने से, मूर्खको उनके अनुसार वर्तनेसे और पंडित को सचसे बस करना चाहिये ॥ १२ ॥

वरंनराज्यं नकुराजराज्यं वरंनमित्रंनकुमित्रमित्रम्।
वरंनशिष्योनकुशिष्यशिष्योवरंनदारानकुदारदाराः

दोहा–नहिं कुराज बिनु राज भल, त्यों कुमीतहु मीत ॥
शिष्य बिना बरुहै भलो, त्यों कुदार कहुनीत ॥ १३ ॥

राज्य न रहना अच्छा परन्तु कुराज का राज्य होना अच्छा नहीं, मित्र का न होना यह अच्छा पर कुमित्र करना अच्छा नहीं शिष्य न हो यह अच्छा पर निंदित शिष्य शिष्य कहलावे यह अच्छा नहीं, भार्या न रहे यह अच्छा पर कुभार्या का भार्या होना अच्छा नहीं

कुराजराज्येनकुतः प्रजासुखं
कुमित्रमित्रेण कुतोभिनिर्वृतिः ।
कुदारदारैश्च कुतोगृहेरतिः
कुशिष्यमध्यापयत कुतोयशः ॥ १४ ॥

दोहा–सुखकहं पर्जा कुराजतें, मित्र कुमित्रन प्रेम ॥
कहँ कुदारतें गेहसुख, कहं कुशिष्य यश देय ॥ १४ ॥

दुष्ट राजा के राज्य में प्रजा को सुख कैसे हो सकता है, कुमित्र

मित्र से आनन्द कैसे हो सकता है, दुष्ट स्त्री से गृह में प्रीति कैसे होगी और कुशिष्य को पढ़ाने वाले को कीर्ति कैसे होगी ॥ १४ ॥

सिंहादेकंवकादेकं शिक्षेच्चत्वारिकुक्कुटात् ।
वायसात्पञ्चशिक्षेच्चषट्शुनस्त्रीणिगर्दभात् ॥१५॥

दोहा-एक सिंह एक बकनतें, अरु मुर्गा तें चारि ॥
काकपंच षट स्वानतें, गर्दभतें गुन चारि ॥ १२ ॥

सिंह से एक बगुले से एक कुक्कुट से चार बातें सीखनी चाहिये, कौवेसे पांच, कुत्तेसे छु और गदहेसे तीन गुण सीखना उचितहै१५

प्रभूतं कार्यमपि वा तन्नरः कर्तु मिच्छति ।
सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेकं प्रचक्षते ॥ १६ ॥

दोहा-अति उन्नत कारज कछु, किये चाहत नरकोय ।
करै अनन्त प्रयत्नतें, गहत सिंह गुणसोय ॥ १६ ॥

कार्य्य छोटा हो वा बड़ा जो करणीय हो उसको सब प्रकार के प्रयत्न से करना उचित है इसे सिंह से एक सीखना चाहिये ॥ १६॥

इन्द्रियाणिच संयम्य वकवत्पण्डितो नरः ।
देशकाल बलंज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ॥१७॥

दोहा-देशकालबल जानिके, गहि इन्द्रियको ग्राम ॥
वक जैसे पण्डित पुरुष, कारज करहिं समान ॥ १७ ॥

विद्वान पुरुषको चाहिये कि इन्द्रियों का संयम करके देश काल और बलको समझ कर समान सब कार्यों को साधे यह एक गुण बगुले से सीखना चाहिये ॥ १७ ॥

प्रत्युस्थानञ्च युद्धञ्च संविभागश्च वन्धुषु।
स्वयमाक्रम्यभुक्तञ्च शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात्॥१८

दोहा-प्रथम उठ युद्ध में जुरै, बन्धु विभागिहिं देत॥
स्वोपार्जित भोजन करै, कुक्कुट गुन चहु लेत॥ १८॥

उचित समय में जागना, रण में उद्यत रहना, बन्धुओं को भाग देना और आप आक्रमण करके भोजन करना इन चार बातों को कुक्कुट से सीखना चाहिये॥ १८॥

गूढमैथुनचारित्वं काले काले च संग्रहम्।
अप्रमत्तमविश्वासं पंचशिक्षेच्च वायसात्॥१६॥

दोहा-अधिक ढीठ अरु गूढ़रति, समय सुआलय संच॥
नहिं विश्वास प्रमाद जेहि, गह वायस गुनपंच। १६॥

छिपकर मैथुन करना, समय २ पर संग्रह करना सावधान रहना और किसी पर विश्वास न करना इन पांचों को कौवे से सीखना उचित है॥ १६॥

वह्वाशी स्वल्पसन्तुष्टः सनिद्रो लघुचेतनः।
स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडैतेस्वानता गुणः॥२०॥

दोहा-बहु भुख थोरेहु तोष अति, सोवहि शीघ्र जगात।
स्वामि भक्त बड़ बीरता, षट गुन श्वान नहात॥ २०॥

बहुत खाने को भूख रहते भी थोड़े ही से सन्तुष्ट होना गाढ़ी निद्रा रहते भी झटपट जागना, स्वामी की भक्ति और शूरता इन छ गुणों को कुत्ते से सीखना चाहिये॥ २०॥

सुश्रान्तोऽपि वहेद्भारं शीतोष्णं न च पश्यति ।
संतुष्टश्च रतेनित्यं त्राणिशिक्षेच्चगर्दभात् ॥२१॥

दोहा–भार बहुत थाकत नहीं, सीत उष्ण सम जाहि ।
हिये अधिक सन्तोष गुन, गरदभ तीनि गहाहि ॥ २१ ॥

अत्यन्त थक जाने पर भी बोझ ढोते जाना शीत और गरम पर दृष्टि न देना सदा सन्तुष्ट हो कर विचरना इन तीन बातों को गदहे से सीखना चाहिये ॥ २१ ॥

एतान् विंशति गुणा ना चरिष्यति मानवः ।
कार्यावस्थासु सर्वासु अजेयः सभविष्यति ॥२२॥

दोहा–विंशति सीख विचारि यह, जो नर उर धारंत ।
सो सब नर जीतत अवल, जय यश जगत लहंत ।

जो मनुष्य इन बीस गुणों लो धारण करेगा वह सदा सब कामों में विजयी होगा ॥ २२ ॥

॥ इति वृद्धचाणक्ये षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

अर्थनाशं मनस्तापं गृहीणी चरितानि च ।
नीचवाक्यं चापमानं मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥१॥

दोहा–अरथनाश मन ताप अरु, दूर चरित घर मांहि ।
वंचनता अपमान निज, सुघर प्रकाशत नाहिं ॥ १ ॥

धनका नाश, मनका ताप गृहणी का चरित्र नीचका वचन और अपमान इनको बुद्धिमान न प्रकाश करें ॥ १ ॥

धन धान्य प्रयोगेषु विद्या संग्रहणेषु च।
अहारेव्यवहारे च त्यक्तलज्जाः सुखीभवेत् ॥२॥

दोहा-संचत धन अरु धान कूं, विद्या सीखत बार।
करत अहार व्यवहार कूं, लाज न करिये अगार॥
अन्न और धनके व्यापार में विद्या के संग्रह करने में अहार और व्यापार में जो पुरुष लज्जा को दूर रक्खेगा वह सुखी होगा॥ २॥

सन्तोषमृततृप्तानां यत्सुखं शान्तरेवच।
नचतद्धन लुब्धानामितश्चेतश्चधावताम् ॥३॥

दोहा-त्रिषित सुधा सन्तोष चित, शांत लहत सुख सोय॥
इत उत दौलत लोभ धन, कहंसो सुख ताहि होय॥ ३॥
संतोष रूप अमृत से तृप्त लोगों को जो शान्ति और सुख होता है वह धनके लोभियों को जो इधर उधर दौड़ा करते हैं उन्हें कदापि सुख नहीं होता॥ ४॥

सन्तोषःत्रिषुकर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जप दानयो ॥४॥

दोहा-तीन ठौर सन्तोष धर, तिय भोजन धन मांहि।
दानन में अध्ययन में, तप में कीजे नांहि॥ ४॥
अपनी स्त्री, भोजन और धन इन तीनों में संतोष करना चाहिये पढ़ना, जप और दान इन तीनों में संतोष कभी न करना चाहिये ॥४॥

विप्रयोर्विप्रवहन्योश्च दम्पत्योः स्वामि भृत्ययाः।
अन्तेरण न गन्तव्यं हलस्य वृशभस्य च ॥५॥

दोहा-विप्र अरुनारि नर, सेवक स्वामिहि अन्त ।
हल औ बैल मधिते कबहुँ नहिं जावे सुखवन्त ॥ ५ ॥

दो ब्राह्मण, अग्नि, स्त्री—पुरुष, स्वामि सेवक और बैल इनके मध्य होकर नहीं जाना चाहिये ॥ ५ ॥

पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरुं ब्राह्मणमेवच ।
नैवगांच कुमारीं च न वृद्धं न शिशुं तथा ॥६॥

दोहा-अनल विप्र अरु धेनु पुनि, कन्या कुँआरी देत ।
बालक अरु बुद्धिवन्त कै, पग न लगावहु पेत ॥ ६ ॥

अग्नि गुरु और ब्राह्मण इनको पैर से कभी नहीं छूना चाहिये वैसे ही न गौको न कुमारी कन्या को न वृद्ध को और न बालकको पैरसे छूना चाहिये ॥ ६ ॥

हस्ती हस्त सहस्त्रेण शत हस्तेन वाजिनः ।
शृंगिणो दश हस्तेन देश त्यागेन दुर्जनः ॥७॥

दोहा-हस्तीहजार तज सत हाथन ते बाजि ।
शृङ्ग सहित तेहि हाथ दश, दुष्ट देश तजि भाजि ॥ ७ ॥

हाथी को हजार हाथ पर, घोड़े को सौ हाथ पर और दुर्जन को देश त्याग करके छोड़ना चाहिये ॥ ७ ॥

हस्ती अंकुश मात्रेण बाजि हस्तेन ताड्यते ।
शृङ्गी लकुट हस्तेन खड्ग हस्तेनदुर्जनः ॥८॥

दोहा-हस्ती अंकुश तें हनिय, ताजन पकरि तुरंग ।
शृङ्गि पशुन को लकुटतैं, असितैं दुर्जन भंग ॥ ८ ॥

हाथी अंकुशसे, घोड़ा हाथ (चाबुक) से सीगवाले जंतु लाठी युक्त हाथ से और दुर्जन तलवार संयुक्त हाथ से दण्ड पाते हैं ॥८॥

तुष्यन्ति भोजनं विप्राः मयूरा घन गर्जिताम् ।
साधवः पर सम्पतौ खला पर विपत्तिषु ॥९॥

दोहा-तुष्ट होत भोजन किये, ब्राह्मण लखि घन मोर ।
पर संपति लखि साधुजन, खललखि पर दुख घोर ॥ ९ ॥

भोजन के समय ब्राह्मण, मेघ के गर्जने पर मयूर, दूसरे को सम्पति प्राप्त होने पर साधु और दूसरे को बिपत्ति आने पर दुर्जन संतुष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्जनम् ।
आत्मतुल्य बलं शत्रुः विनयेन बलेनवा ॥१०॥

दोहा-बलवंतहि अनुकूलहि, प्रतिकूलहि बलहीन ।
अतिबल समबल शत्रुको, बिनय बलहि बशकीन ॥ १० ॥

बली वैरी का उसके अनुकूल, व्यवहार करने से, यदि वह दुर्जन हो तो उसे प्रतिकूलता से, बल में अपने सामन शत्रु को बिनय से अथवा बलसे जीते ॥ १० ॥

बाहुवीर्यबलं राज्ञो ब्राह्मणा ब्रह्म विद्वली ।
रूपयौवन माधुर्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम् ॥११॥

दोहा—नृपहि बाहु बल ब्रह्मणहिं, वेद ब्रह्म को जान ।
तिय बल माधुरता कह्यो, रूपशील गुणखान ॥ ११ ॥

राजा को अपने बाहु का बल है और ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी व वेदपाठी बली होता है और स्त्रियों की सुन्दरता तरुणता और मधुरता अति उत्तम बल है ॥ ११ ॥

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम् ।
छीद्यन्ये सरलास्तत्र कुब्जातीष्ठन्तीवादपाः ॥१२॥

दोहा—अतिहि सरल नहिं होइये, देखहु जा वनमांहि ।
तरु सीधे छेदत तिनहि, बांके तरु रहि जांहि ॥ १२ ॥

अत्यन्त सीधे स्वभाव से नहिं रहना चाहिये इस कारण कि वन में जाकर देखो सीधे वृक्ष काटे जाते हैं औ.र टेढ़े खड़े रहते हैं ॥१२॥

यत्रोदकं तत्र वसन्तीहंसा-
स्तथैवशुष्कं परिवर्जयन्ती ।
न हंसतुल्येन नरेण भाव्यं-
पुनस्त्यजान्तः पुनराश्रयन्ते ॥ १३ ॥

दोहा-सजल सरोवर हंस बसि, सूखत उड़ि है सोउ ।
देखि सजल आवत बहुरि, हस समान न होउ ॥ १३ ॥

जहां जल रहता है वहांही हंस बसते हैं वैसेही सूखे सरको छोड़ते हैं; नरको हंसके समान नहीं रहना चाहिये कि वे बार २ छोड़ देते हैं और बार २ आश्रय कर लेते हैं ॥१३॥

उपार्जितानां वीत्तानां त्याग एवहि रक्षणम् ।
तडागोदर संस्थानां परिश्रव इवांभसाम् ॥१४॥

दोहा—धन संग्रह को पेखिये; प्रगट दान प्रतिपाल ।
जो मोरी जल जानकूं, तब नहि फूटत ताल ॥ १४ ॥

अर्चित धनका व्यय करना ही रक्षा है. जैसे नये जल आने पर तड़ाग के भीतर के जलको निकालनाही रक्षा है ॥ १५ ॥

यस्यार्थस्तस्य मित्राणि यस्यार्थस्तस्य बांधवा ।
यस्यार्थः सपुमांल्लोके यस्यार्थः सच जीवति॥१५॥

दोहा—जिनके धन तेहि मित बहु, जेहि धन वंधु अनंत ।
धन सोइ जग में पुरुषवर; सोई जन जीवत ॥ १५ ॥

जिसको धन रहता है उसीको मित्र होते हैं, जिसके पास अर्थ रहता है उसीको वंधु होते हैं जिसको धन रहता है वही पुरुष गिना जाता है जिसको अर्थ है वही जीता ॥ १५ ॥

स्वर्ग स्थितानामिह जीवलोके—
चत्वारि चिन्हानि वसन्ति देहे ।
दान प्रसंगो मधुरा च वाणी
देवार्चनं ब्राह्मण तर्पणं च ॥१६॥

दोहा—स्वर्गबासि जन के सदा, चार चिन्ह लखि येहि ।
देव विप्र पूजा मधुर, वाक्य दान करि देहि ॥ १६ ॥

संसार में आने पर स्वर्गस्थानियों के शरीर में चार चिन्ह रहते हैं, दान का स्वभाव मीठा बचन, देवता की पूजा ब्राह्मण को तृप्त करना अर्थात् जिन लोगों में दान आदि लक्षण रहै उनको जानना चाहिये कि वे अपने पुण्य के प्रभाव से स्वर्गवासी मृत्यु लोक में अवतार लिये हैं ॥ १६ ॥

अत्यन्त कोपः कटुका च वाणी—
दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम् ।
नीच प्रसंगः कुलहीन सेवा—

चिन्हानि देह नरक स्थितानाम् ॥ १७ ॥

दोहा—अतिहि कोप कटु बचनहु, दारिद्र नीच मिलान।
स्वजनबैर अकुलिन टहल, यह षट नर्क निसान ॥ १७ ॥

अत्यन्त क्रोध, कटु वचन, दरिद्रता अपने जनों में वैर, नीच का संग, कुलहीन की सेवा, ये चिन्ह नरक बासियों के देहों में रहते हैं ॥ १७ ॥

गम्यते यदि मृगेन्द्र मन्दिरं-
लभ्यते करि कपोल मौक्तिकम् ॥१८॥
जम्बुकालय गते च प्राप्यते-
वत्स पुच्छ खर चर्म खंडनम् ॥ १८ ॥

दोहा—सिंहभवन यदि जाय कोउ, गज मुक्ता तहँ पाव।
वत्सपूछ खर चर्म टुक, स्यार मांद जो पाव ॥ १८ ॥

यदि कोई सिंहकी गुहा में जा पड़े तो उसको हाथी के कपोल की मोती मिलती है और सियार के स्थान में जाने पर बछवे की पूँछ और गदहे के चमड़े का टुकड़ा मिलता है ॥ १८ ॥

शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना
न गुह्य गोपने सक्तं नच दंश निवारणे ॥१९॥

दोहा--श्वान पूँछ सम जीवनो, विद्या बिनु है व्यर्थ।
दंश निवारण तन ढ़कत, नहिं एको सामर्थ ॥ १९ ॥

कुत्ते की पूँछ के समान विद्या बिना जीना व्यर्थ है। कुत्ते की पूँछ गोप्य इन्द्रिय को ढाँक नहीं सकती है न मच्छड़ आदि जीवों को उड़ाही सकती है ॥ १९ ॥

वाचां शौचं च मनसः शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
सर्वभूत दयाशौचमेतच्छौच परार्थिनाम् ॥ २० ॥

दोहा-बचन शुद्ध मन शुद्ध और, इन्द्रिय संयम शुद्ध ।
भूत दया और स्वच्छता, पर अर्थिन यह शुद्ध ॥

बचन की शुद्धि, मति की शुद्धि, इन्द्रियों का संयम, जीवों पर दया और पवित्रता ये परार्थियों की शुद्धि है ॥ २० ॥

पुष्पे गन्धं तिले तैलं काष्टे वह्नि पयो घृतम् ।
इक्षौ गुडं तथा देह पश्यात्मानंविवेकतः ॥२१॥

दोहा-बास सुमन महँ तेल तिल, अग्नि काठ पय घीव ।
ऊखहिं गुड़ तिमि देह में, आतम लखु मति सीव ॥ २१ ॥

जैसे फूल में गन्ध तिल में तैल काष्ठ में आग, दूध में घी ऊख में गुड़ वैसे ही देह में आत्मा को विचार से देखो ।

इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥



अथ अष्टमोध्यायः ।

अधमा धन मिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमाः ।
उत्तमामान मिच्छन्ति मानो हि महतांधनम् ॥१॥

दोहा-अधम धनहिके चाहते मध्यम धन अरु मान ।
मान धन है बड़न को, उत्तम चाहै मान । १ ॥

अधम धन ही चाहते हैं मध्यम धन और मान और उत्तम मान ही चाहते हैं क्योंकि महात्माओं का धन मान ही है ॥ १ ॥

इक्षुराप पयोमूलं ताम्बूलं फलमौषधम् ।
भक्षयित्वापिकर्तव्यः स्नानदानादिका क्रियाः ॥२॥

सोरठा—ऊख वारि पय मूल, पुनि औषधहू को खाय के ।
तथा खाय ताम्बूल, स्नान दान आदिक उचित ॥ २ ॥

ऊख, जल, दूध, पान फल और औषधि इन वस्तुओं को भोजन करने पर भी स्नान दान आदि क्रिया कर सकते हैं ॥ २ ॥

दीपो भक्षयते ध्वांतं कज्जलं च प्रसूयते ।
यदन्नं भक्षयतेनित्यं जायते तादृशीप्रजा ॥ ३ ॥

दोहा—दीपक तमको खात है, तो कज्जल उपजाय ॥
अन्न जैसेही खाय जो, तैसेइ संतति जाय ॥ ३ ॥

दीप अन्धकार को खाता है और काजल को जन्माता है सत्य है जो जैसा अन्न सदा खाता है उसको वैसे ही सन्तति होतीहै ॥३॥

वित्तंदोहिगुणान्वितेषु मतिमन्नान्यत्रदेहिक्वचित् ।
प्राप्तंवाशिनिधेर्जलंधनमुखां माधुर्ययुक्तंसदा ॥
जीवांस्थावरजंगमाश्चसकलां संजाव्यभूमण्डलं ।
भूय पश्यतदेवकोटिगुणितं गच्छंतम्भोनिधिम् ॥४॥

दोहा—गुणहिं न औरहि देइ धन, लखिय जलद जल खाय ।
मधुर कोटिगुण करि जगत, जीवन जल निधि जाय ॥ ४ ॥

हे मतिमान् ! गुणियों को धन दो, औरों को कभी मत दो । समुद्र से मेघ के मुख में प्राप्त हो कर जल सदा मधुर हो जाता है और पृथ्वी पर चर अचर सब जीवों को जिलाकर फिर वही जल कोटि गुण होकर उसी समुद्र में चला जाता है ॥ ४ ॥

चाण्डालाना सहस्रश्च सूरिभिस्तत्वदर्शिभिः ॥
एकोहि यवनः प्रोक्तो न नीचो यवनात्परः ॥ ५ ॥

दोहा-एक सहस चण्डाल सम, यवन नीच इक होय ।
तत्वदर्शि कह यवन ते, नीच और नहीं कोय ॥ ५ ॥

तत्वदर्शियों ने कहा कि हजार चांडालों के तुल्य एक यवन होता है, यवन से नीच दूसरा कोई नहीं है ॥ ५ ।

तैलाभ्यंगे चिताधूमे मैथुने क्षौर कर्मणि ।
तावत्भवति चाण्डालो यावत्स्नान ममाचरेत् ॥६॥

दोहा-चिताधूम तनुतेल लगि, मैथुन क्षौर बनाय ।
तब लौं वे चण्डाल सम, जबलौं नाहिं नहाय ॥ ६ ॥

तेल लगाने पर चिता का धूम लगने पर, स्त्रीप्रसंग करने पर और बाल बलवाने पर मनुष्य तब तक चाण्डाल ही बना रहता है जब तक स्नान नहीं करता ॥ ६ ॥

अजीर्णे भैषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम् ।
भोजनेचामृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम् ॥७॥

दोहा-बारि अजीरण औषध, जीरण में बलवानि ।
भोजन के सँग अमृत है, भोजवन्त बिषमानि ॥ ७ ॥

अपच होने पर जल औषधि के समान है पच जाने पर वह बल को देता है । भोजन के समय पानी अमृत के समान है, किन्तु भोजन के अन्त में विष का फल देता है ॥ ७ ॥

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्च ज्ञानतो नरः ।

हतं निर्नायकं सैन्यं स्त्रिया नष्टाह्य भर्तृका: ।८।

दोहा-ज्ञान क्रिया विन नष्ट है, नर जो नष्ट अज्ञान ।
निरनायक नसु सैनहू त्यो, पति बिनु जाति जान ॥ ८ ॥

क्रिया क विना ज्ञान व्यर्थ है अज्ञान से नर मारा जाता है सेना पति के बिना सेना मारी जाती है, स्वामी हीन स्त्री नष्ट हो जातीहै

वृद्धकाले मृताभार्या बन्धु हस्त गतंधनम् ।
भोजनं च पराधीनं त्रिसू पुंसा विडम्बना: ॥ ६ ॥

दोहा-वृद्ध समय जो मरु तिया, बन्धु हाथ धन जाय ।
पराधीन भोजन मिलै, अहै तीन दुखदाय ॥ ६ ॥

बुढ़ापे में स्त्री मरी, बन्धु के हाथ में गया धन,दूसरे के आधीन, भोजन ये तीन पुरुषों की विडम्बना है अर्थात् दुखदायक होते हैं॥६॥

अग्निहोत्र बिनावेदा: न च दान विना क्रिया: ।
नभावेनविनासिद्धिस्तस्माद्भावोहिकारणम् ॥१०॥

दोहा-अग्निहोत्र बिनु वेद नहिं, यज्ञ क्रिया बिनु दान ।
भाव बिना नहिं सिद्धि है, सब में भाव प्रधान ॥ १० ॥

अग्निहोत्र के बिना वेदों का पढ़ना व्यर्थ होता है,दान के बिना यज्ञादि क्रिया नहीं बनती,भावके बिना कोई सिद्धि नहीं होती इस हेतु प्रेमही सबका कारण है ॥ १० ॥

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये ।
भावोहिविद्यतेदेवस्तस्माद्भावोहिकारणम् ॥ ११ ॥

दोहा-देव न काठ पषानमृत, मूरति में न रहाय ।
भाव तहांही देवभल, कारने भाव कहाय ॥ ११ ॥

देवता काठ में नहीं है न पाषाण में है न मृतिका की मूर्त्ति में हैं। निश्चय है कि देवता भाव में विद्यमान है इस हेतु भावही सबेका कारण है ॥ ११ ॥

काष्ठ पाषाण धातूनां कृत्वा भावेन सेवनम्।
श्रद्धया च तथा सिद्धिस्तस्य विष्णोः प्रसादतः ॥१२॥

दोहा--धातु काठ पाषाण को, करु सेवन युत भाव।
श्रद्धासे भगवत्कृपा, तैसे तेहि सिधि आव ॥ १२ ॥

धातु काठ पाषाण का भाव सहित सेवन करना श्रद्धा से और भगवत् कृपा से जैसा भाव है तैसीही सिद्धि होती है ॥ १२ ॥

शांन्तितुल्यं तपोनास्ति न सन्तोषात्परं सुखम्।
न तृष्णयाः परोव्याधिनचधर्मो दया परः॥ १३॥

दो०-नहिं संतोष समान सुख, तप न क्षमा सम आन।
तृष्णा सम नहि व्याधि तन, धरम दया सम मान। १३।

शान्ति के समान दूसरा तप नहिं है, न सन्तोष से परे सुख न तृष्णा से दूसरी व्याधि और न दया से अधिक धर्म है ॥ १३ ॥

क्रोधोवैवस्वतो राजा तृष्णावैतरणी नदी।
विद्याकाम दुहाधेनुः सन्तोषोनन्दनंवनम् ॥ १४ ॥

दो०-त्रिसना वैतरणी नदी, धरम राज सह रोष।
कामधेनु विद्या कहिय, नन्दन बन संतोष ॥ १४ ॥

क्रोध यमराज है और तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या काम धेनु गाय है और सन्तोष इन्द्र की वाटिका है ॥ १४ ॥

गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम्।

सिद्धिर्भूषयते विद्यां भोगो भूषयते धनम् ॥१५॥

दो०-गुन भूषन है रूप को, कुलको शील कहाय ।
विद्या भूषन सिद्धि जन, धन तेहि खरचत पाय ॥ १५ ॥

गुण रूपको भूषित करता है, शील कुलको अलंकृत करता है, सिद्धि विद्या को भूषित करती है, और भोग धनको भूषित करता है

निर्गुणस्य हतंरूपं दुशीलस्य हतंकुलम् ।
असिद्धस्य हताविद्या अभोगेन हतंधनम् ॥१६॥

दो०-निर्गुण को हत रूप है, हत कुशील कुलगान ।
हत विद्या हु असिद्ध को, हत अभोग धन धाम । १६ ।

निर्गुणी की सुन्दरता व्यार्थ है, शीलहीन का कुल निंदित होता होता है सिद्धि के बिना विद्या व्यर्थ है भोगके बिना धन व्यर्थ है॥१६॥

शुद्धं भूमिगतं तोयं शुद्धा नारी पतिव्रता ।
शुचिः क्षेमकरो राजा सन्तोषी ब्राह्मणः शुचिः॥१७॥

दो०—शुद्ध भूमि गत वारि है, नारि पतिव्रत और ।
क्षेम करै सो भूप शुचि, विप्र तोष शुचि तौन ॥ १७ ॥

भूमि गत जल पवित्र होता है, पतिव्रता स्त्री पवित्र होती है, कल्याण करने वाला राजा पवित्र गिना जाता है और सन्तोषी ब्राह्मण शुद्ध होता है ॥ १७ ॥

असंतुष्टाद्विजा नष्टा संतुष्टाश्च महीभृतः ।
सलज्जा गणिकानष्टा निर्लज्जाश्च कुलांगनाः१८

दो०-असंतोष ते विप्रहत, नृप संतोष ते ख्वारि ।
गनिका बिनसे लाजतें, लाज बिना कुल नारि ॥ १८ ॥

असंतोषी ब्राह्मण निन्दित गिने जाते हैं और संतोषी राजा, सलज्जा वेश्या और लज्जा हीन स्त्री निन्दित गिनी जाती है ॥१८॥

किंकुलेन विशालेन विद्याहीने देहिनाम् ।
दुष्कुलंचापि विदुषो देवैरपि पूज्यते ॥ १६ ॥

दोहा–कहा होत बड़ वंसते, जो नर विद्या हीन ।
प्रगट सुरतैं पूजिये, विद्या तैं कुलहीन ॥ १६ ॥

विद्या हीन बड़े कुल से मनुष्यों को क्या लाभ है ? विद्वान का नीच भी कुल देवता से पूजा पाता है ॥ १६ ॥

विद्वान् प्रशंस्यते लोके विद्वान्सर्वत्र गौरवम् ।
विद्याया लभते सर्वं विद्यासर्वत्र पूज्यते ॥ २० ॥

दोहा–विदुष प्रसंशित होत जग, सब थल गौरव पाय ।
विद्या से सब मिलत है, थल सब सोइ पुजाय । २० ।

संसार में विद्वान्ही प्रशंसित होता है, विद्याही सब स्थानों में आदर पाता है, विद्याही से सब मिलता है, विद्याही सब स्थानों में पूजित होती है ॥ २० ॥

रूपयौवन सम्पन्ना विशाल कुल सम्भवा ।
विद्या हीना न शोभन्ते निर्गन्धाइवकिंशुका ॥२१॥

दोहा–संयुत जौवन रूप तै, कहियत बड़े कुलीन ।
विद्याविन सोभै न जिमि, पुहुप गंध ते हीन ॥ २१ ॥

सुन्दर तरुणायुत और बड़े कुल में उत्पन्न विद्या हीन नहीं शोभते जैसे बिना गंध के फूल ॥ २१ ॥

मांसभक्ष्यैः सुरापानैः मूर्खैश्चाक्षर वर्जितः ।

पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराक्रांतास्तिमेदिनी ॥२२॥

दोहा–मांसभक्ष मदिरा पियत, मूरख अक्षर हीन ।
नराकार पशुभार गृह, पृथ्वी नहिं सहु तीन ॥ २२ ॥

मांस के भक्षण करने वाले, मदिरा पान करने वाले, निरक्षर मूर्ख पुरुषाकार पशुओं के भार से पृथ्वी पीड़ित रहती है ॥ २२ ॥

अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनश्च ऋत्विजः ।
यजमानदानहीनो नास्तियज्ञसमोरिपुः ॥ २३ ॥

दोहा–अन्नहीन राज्यहि दहत, दानहीन यजमान ।
मंत्रहीन ऋत्विजन कह, क्रतुसम रिपु नहिं आन ॥ २३ ॥

यदि अन्नहीन होतो राजा को, यज्ञ मन्त्रहीन होतो ऋत्विज को दान हीन होता यजमान को जलाते हैं इस कारण यज्ञ के समान कोई शत्रु भी नहीं है । २३ ।

॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

मुक्तिमिच्छसिचेत्तात विषयान्विषवत्त्यजेत ।
क्षमार्जवदयाशौचं सत्यंपीयूषवत्पिव ॥ १ ॥

सो०–मुक्ति चहो जो तात, विषयन को तजु विष सरिस ।
दया शील सच बात, शौच सरलता क्षमा गहु ॥ १ ॥

हे भाई ! यदि मुक्ति चाहते हो तो विषयों को विष के समान छोड़ दो, सहन शीलता, सरलता, दया, पवित्रता और सचाई को अमृत के समान पिओ ॥ १ ॥

परस्परस्य मर्माणि ये भाषन्ते नराधमाः ।
तएवविलंययान्ति वल्मीकोदरसर्पवत् ॥२॥

दोहा--नीच अधम नर भाषते, मर्म परस्पर आप ।
ते विलाय जैहैं यथा, मधि बिमवटको साँप ॥ २ ॥

जो नराधम परस्पर अन्तरात्माके दुख दायक बचन को भाषण करते हैं निश्चय है कि वे नष्ट हो जाते हैं जैसे बिलमें पड़कर साँप । २ ।

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदंडे-
नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य ।
विद्वान् धनी नृपति दीर्घजीवी-
धातुः पुराकोऽपिनबुद्धिदोऽभूत् ॥३॥

दो०-गन्ध सोन फल इक्षु घन, बुध चिरायु नरनाह ।
सुमन मलय धाता न किय, लहु ज्ञाता गुरु नाह ॥ ३ ॥

सुवर्ण में गन्ध, ऊख में फल, चन्दन में फूल, विद्वान धनी, राजा चिरजीवी न किया इससे निश्चय है कि विधाता को पहिले कोई बुद्धिदाता न था ॥ ३ ॥

सर्वौषधीनाममृता प्रधानम्-
सर्वेषुसौख्येष्वशनंप्रधानम्-
सर्वेन्द्रियाणां नयनंप्रधानम्-
सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥ ४ ॥

दो०-गुरच औषधिन सुखन में, भोजन कहो प्रधान ।
चक्षु इंद्रिन सब अंग में, शिर प्रधान तिमि जान ॥ ४ ॥

सर्व औषधियों में गुर्च प्रधान है, सब सुख में भोजन श्रेष्ठ है, सब इन्द्रियों में आँख उत्तम है सब अंगों में शिर श्रेष्ठ ॥ ४ ॥

दूतो न संचरति खेनचलेच्चवार्त्ता-
पूर्वं न जल्पितमिदं न च संगमोऽस्ति ।
व्योम्निस्थितं रवि शशि ग्रहणं प्रशस्तं ॥
जानातियो द्विजवरः सकथं न विद्वान् ॥ ५ ॥

दो०-दूत वचन गति रङ्ग नहिं, नभ न आदि कछु कोय ।
शशि रवि ग्रहण बखानु जो, नहिं न विदुष किमि होय ॥५॥

आकाश में दूत न जा सकता न बात कि चर्चा चल सकती न पहिले ही से किसी ने कह रक्खा न किसी से संगम हो सकता ऐसी दशा में आकाश में स्थित सूर्य चन्द्रके ग्रहण को जो द्विजवर स्पष्ट जानते हैं कि वे कैसे विद्वान नहीं है ॥५॥

विद्यार्थी सेवकः पांथक्षुधार्तो भयकातर ।
भांडारी प्रतिहारीच सप्तसुप्तान् प्रबोधयेत् ॥ ६ ॥

दो०-द्वारपाल सेवक पथिक, समय क्षुधातुर पाय ।
भांडारी विद्यारथी, सोवत सात जगाय ॥६॥

विद्यार्थी, सेवक, अधिक भूखसे पीड़ित, भय से कातर, भंडारी द्वारपाल ये सात यदि सोते हों तो जगा देना चाहिये ॥ ६ ॥

अहिं नृपं च शार्दूलं बृटिं च बालकं तथा ।
परश्वानं च मूर्खं च सप्त सुप्तान्नबोधयेत् ॥७ ॥

दोहा–भूपति नृपति मूढ़पति, त्यों बर्रैं औ बाल ।
सोवत सात जगाइये, नहिं पर कूकर व्याल ॥ ७ ॥
साँप, राजा, व्याघ्र बर्रैं, बालक दूसरे का कुत्ता और मूर्ख ये सात सोते हों तो नहीं जगाना चाहिये ॥ ७ ॥

अर्थाधीताश्चयैर्वेदा स्तथाशुद्रान्न भोजिनः ।
तेद्विजाः किंकरिष्यंति निर्विषाइव पन्नगाः ॥८॥

दोहा–अर्थहेत वेदहि पढ़ै, खाँय शूद्र को धान ।
ते द्विज क्याकर सकत है, बिन बिष व्याल समान ॥ ८ ॥
जिन्होंने धनके अर्थ वेदको पढ़ा, तैसेही शूद्रका अन्न भोजन किया वे ब्राह्मण विषहीन सर्प के समान क्या कर सक्ते ॥ ८ ॥

यस्मिन् रुष्टेभयं नास्ति तुष्टं नैव धनागमः ।
निग्रहोऽनुग्रहनास्ति स रुष्टः किंकरिष्यति ॥९॥

दोहा–रुष्ट भये भय तुष्ट में, नहीं धनागम होय ।
दंड सहाय न करि सकै, का रिसाय करु सोय ॥ ९ ॥
जिसको रुष्ट होने पर न भय है न प्रसन्न होने पर धन का लाभ न दण्ड वा अनुग्रह हो सक्ता है वह रुष्ट होकर क्या करेगा ॥ ९ ॥

निर्विषणोपि सर्पेण कर्तव्यामहतीफणा ।
विषमस्तुनचाप्यस्तु घटाटोपो भयंकरः ॥ १० ॥

दोहा–बिन विषहु के साँप को, चाहिय फनै बढ़ाय ।
होउ नहीं वा कोउ विष, घटा टोप भय दाय ॥ १० ॥
विषहीन सांपको भी अपना फण बढ़ाना चाहिये क्योंकि विष हो वा न हो आडम्बर भयानक होता है ॥ १० ॥

प्रातर्द्यूत प्रसंगेन मध्याह्ने स्त्री प्रसंगतः।
रात्रौचोर प्रसंगेन कालोगच्छतिधीमताम् ॥११॥

दोहा–प्रातः द्यूत प्रसङ्ग से, मध्य स्त्री परसंग।
सायं चोर प्रसङ्ग कह, काल गहे तब अंग ॥ ११ ॥

प्रातःकाल में जुआड़ियों की कथा से अर्थात् महाभारत से मध्यान्ह में स्त्री प्रसंग से अर्थात् रामायण से, रात्रि में चोरों की वार्तासे अर्थात् भागवत की वार्तालाप से बुद्धिमानों का समय बीतता है ॥ तात्पर्य यह है कि महाभारत के सुनने से यह निश्चय हो जाता है कि जूवा कलह और छल का घर है। इस लोक और परलोक में उपकार करने वाले उन कामों को महाभारत में लिखी हुई रीतियों से करने पर उन कामों का पूरा फल होता है इस कारण बुद्धिमान लोग प्रातः कालही में महाभारत को सुनते हैं जिसमें दिन भर उसी रीति से काम करते जायँ। रामायण सुनने से स्पष्ट उदाहरण मिलता है कि स्त्री के वश होने से अत्यन्त दुःख होता है और पर स्त्री पर दृष्टि देने से पुत्र कलत्र जड़ मूलके साथ पुरुष का नाश हो जाता इस हेतु मध्यान्ह में अच्छे लोग रामायण को सुनते हैं। और प्रायः रात्रि में लोग इन्द्रियों के बश में हो जाते हैं, और इन्द्रियोंका यह स्वभाव है कि मन को अपने अपने बिषयों में लगाकर जीव को विषयों में लगा देता है इसी हेतु सें इन्द्रियों को आत्मोपहारक भी कहते हैं। जो लोग रातको भागवत सुनते हैं वे कृष्णके चरित्र को स्मरण करके इन्द्रियों के वश नहीं होते क्योंकि सोलह हजार से अधिक स्त्रियोंके रहते भी श्री कृष्णचन्द्र इन्द्रियों के वश न हुए और इन्द्रियों के संयम से रीति भी जाने जाते हैं ॥ ११ ॥

स्वहस्त ग्रथितामाला स्वहस्त घृष्ट चन्दनम्।

स्वहस्त लिखितं स्तोत्रं शक्रस्यापि श्रियंहरेत् ॥१२॥

दो०--सुमन माल निजकर रचित, स्वलिखित पुस्तक पाठ ।
धन इन्द्रहु नाशै दिये, स्वघसित चन्दन काठ ॥ १२ ॥

अपने हाथ से गूंथी माला. अपने हाथसे घिसा चन्दन अपने हाथ से लिखा स्तोत्र ये इन्द्रकी भी लक्ष्मी को हर लेते हैं ॥ १२ ॥

इक्षुदण्डास्तिलाः शूद्राः कान्ता हेम मेदिनी ।
चन्दनं दधि ताम्बूलं मर्दनं गुण वर्द्धनम् ॥१३॥

दो०—ऊख शूद्र दधि नायका, हेम मेदिनी पान ।
तिल चन्दन इन नवन को, मर्दन ही गुण जान ॥१३॥

ऊख. तिल, शूद्र, कान्ता, सोना, पृथ्वी, चन्दन, दही, पान ये ऐसे पदार्थ हैं कि इनका मर्दन गुणवर्धक है ॥१३॥

दरिद्रता धीरतया विराजते ।
कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते ।
कदन्नता चोष्णतया विराजते ।
कुरूपता शीलतया विराजते ॥१४॥

दो०—दारिद सोहत धीरते, कुपट सुभगता पाय ।
लहि कुअन्न उष्णत्वको, शील कुरूप सुहाय ॥ १४ ॥

दरिद्रता भी धीरतासे शोभती है, स्वच्छतासे कुवस्त्र भी सुन्दर जान पड़ता है, कुअन्न भी उष्णता से मीठा लगता है, कुरूपता भी सुशीलता हो तो शोभती है ॥१४॥

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥



अथ वृद्धचाणक्यस्योत्तरार्द्धम् ।

धनहीनो न हीनश्च धनकिः स सुनिश्चयः ।
विद्यारत्नेन हीनोयः स हीनः सर्व वस्तुषु ॥१॥

दो०—हीन नहीं धन हीन, धन थिर नाहि प्रवीन ।
हीन न और बखानिये, विद्याहीन सुहीन ॥१॥

धनहीन हीन नहीं गिना जाता, निश्चय है कि वह धनीही है । विद्यारत्न जो हीन है वह सब वस्तुओंमें हीन है ॥ १ ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिवेज्जलम् ।
शास्त्रपूतं वदेद्वाक्यं मनः पूतंसमाचरेत् ॥ २ ॥

दो०—दृष्टिशोधि पग धरिय मग, दोजिय जल पट शोधि ।
शास्त्रशोधि बोलिय वचन, करिय काज मन शोधि ॥२॥

दृष्टि से शोधकर पांव रखना उचित है, वस्त्र से शुद्धकर जल पीना, शास्त्र से शुद्धकर वाक्य बोले, मन से शोचकर कार्य करना चाहिये ॥ २ ॥

सुखार्थीचेत्यजेद्विद्यां विद्यार्थीचेत्यजेत्सुखम् ।
सुखार्थीनः कुतोविद्या सुखंविद्यार्थिनः कुतः ॥३॥

दो०--सुख चाहे विद्या तजै, सुख तजि विद्या चाह ।
अर्थिहि विद्या कहां, विद्यार्थिहिं सुख काह ॥३॥

यदि सुख चाहे तो विद्या को छोड़ दे, यदि विद्या चाहे तो सुख को त्याग करे, सुखार्थी को विद्या कैसे होगा और विद्यार्थी को सुख कैसे होगा ॥ ३ ॥

कवयः किंनपश्यन्ति किंनकुर्वन्तियोषितः ।
मद्यपाः किंन जल्पन्ति किंनखादन्ति वायसाः ॥४॥

दोहा-काह न जाने सुकवि जन, करै काह नहिं नारि ।
यद्यपि काह न बकि सकै, काग खाँहि लेहि वारि ॥ ४ ॥

कवि क्या नहीं देखते स्त्री क्या नहीं कर सकती, मद्य पीने वाले क्या नहीं बकते, कौवा क्या नहीं खाता ॥ ४ ॥

रंकं करोति राजानं राजानं रंक मेवच ।
धनिनं निर्द्धनं चैव निर्द्धनं धनिनं विधिः ॥५॥

सो०-बनवै अति रंकन भूमिपति, अरु भूमिपतीनहु रंक अती ।
धनिको धन हीन फिरे करती, अधनी न धनी विधिकेरि गती ॥५॥

निश्चय है कि विधाता रंक को राजा राजा को रंक धनी को निर्धनी और निर्धनी को धनी कर देता है ॥ ५ ॥

लुब्धानां याचकाः शत्रु मूर्खाणां बोधको रिपुः ।
जारस्त्रीणांपतिः शत्रुश्चौराणां चन्द्रमा रिपुः ॥६॥

दो०—याचक रिपु लोभीन के, मूढ़नी जो शिषदान ।
जार तियन निज पति कह्यो, चोरन शशि रिपु जानि ॥६॥

लोभियों को याचक, मूर्खों को समझाने वाला, व्यभिचारिणी स्त्री को पति और चोरों को चन्द्रमा शत्रु है ॥ ६ ॥

येषां न विद्या न तपो न दानं-
न चापि शीलं नगुणो न धर्मः ।

ते मृत्युलोके भुविभारभूता-
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ ७ ॥

दोहा-धर्म शील गुण नाहिं जेहि, नहिं विद्या तप दान ।
मनुज रूप भुवि भार ते, विचरत मृग कर जान ॥ ७ ॥

जिन लोगों को न विद्या है,न तप है, न दान है, न शील है, न गुण है और न धर्म है वे संसार में पृथ्वी पर भाररूप होकर मनुष्य रूपसे मृगके समान फिर रहे हैं ॥ ७ ॥

अन्तःसार विहीनाना मुपदेशो न जायते ।
मलयाचलसंसर्गा न वेणुश्चन्दनायते ॥ ८ ॥

सो०--शून्य हृदय उपदेश, नाहि लगै कैसो करिय ।
बसै मलय गिरिदेश, तोऊ बांस में बास नहिं ॥ ८ ॥

गम्भीरता बिहीन पुरुषों को शिक्षा देना सार्थक नहीं होता मलयाचलके संगसे बांस चदन नहीं होता ॥ ८ ॥

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोतिकिम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥६॥

दो०--स्वाभाविक नहिं बुद्धि जेहि, ताहि शास्त्र करु काह ।
जो नर नयन विहीन हैं, दर्पण से का ताह ॥ ९ ॥

जिसको स्वाभाकि बुद्धि नहीं है उसको शास्त्र क्याकर सकता है । आँखों से हीन पुरुषों को दर्पण क्या करेगा ॥ ६ ॥

दुर्जनं सज्जनं कर्तु मुपायो न हि भूतले ।
अपानं शतधौधौतं न श्रेष्ठमिन्द्रिय भवेत् ॥१०॥

दोहा—दुर्जन सज्जन करन, भूतल नहीं उपाय ।
है अपान शुचि इन्द्रि नहिं, सौ सौ धोयो जाय ॥ १० ॥

दुष्टको सज्जन बनाने के लिये पृथ्वीतल में कोई उपाय नहीं है । जैसे मलके त्याग करने वाली इन्द्रिय सौ सौ बार भी धोई जाय तो भी शुद्ध न होगी ॥ १० ॥

आप्तद्वेषाद्भवेन्मृत्युः परद्वेषाद्धनक्षयः ।
राजद्वेषाद्भवेनाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः ॥ ११ ॥

दोहा—संत विरोध ते मृत्यु मिलु, धनक्षय करि पर द्वेष ।
राज द्वेषते नशत है, कुल क्षय कर द्विज द्वेष ॥ ११ ॥

बड़ोंके द्वेषते मृत्यु होती है, शत्रु के विरोध करने से धन का क्षय होता है, राजा के द्वेषसे नाश होता है और ब्राह्मण के द्वेष से कुलका क्षय होता है ॥ ११ ॥

वरं वने व्याघ्र गजेन्द्र सेविते—
द्रुमालये पत्र फलाम्बू सेवनम् ।
तृणेषु सय्या शतजीर्ण वल्कलं—
न बन्धुमध्ये धनहीन जीवनम् ॥ १२ ॥

छन्द—गज बाघ सेवित वृक्ष घन बन माहि बरु रहिवो करै ।
अरु पत्र फल जल सेवनो तृणसेज वरु लहिवो करै ॥
शतछिद्र वल्कल वस्त्रकरि बहु चाल यह गहिवो करै ।
निज बन्धु महँ धन हीन ह्वै नहिं जीवनो चहिवो करै ॥१२॥

बनमें बाघ और बड़े २ हाथियों से सेवित वृक्षके नीचे पत्ता फल खाना, जलका पीना, घास पर सोना, सौ टुकड़े के बल्कलों का पहिरना श्रेष्ठ है बन्धुओं के मध्यमें धनहीन जीना श्रेष्ठ नहीं है ॥१२॥

विप्रोवृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या-
वेदाः शाखा धर्म कर्माणि पत्रम् ।
तस्मात्मूलं यत्नतो रक्षणीयम्-
छिन्ने मूलं नैव शाखा न पत्रम् ॥१३॥

छन्द-विप्र वृक्ष है मूल सन्ध्या वेद शाखा जानिये ।
धर्म कर्म व्है पत्र दोऊ मूलको नहिं नाशिये ॥
जो नष्टमूल व्है जायतो कुल शाख पात न फूटिये ।
यही नीति सुनीति है की मूल रक्षा कीजिये ॥ १३ ॥

ब्राह्मण वृक्ष है, उसकी जड़ सन्ध्या है, वेद शाखा है और धर्म कर्म ये पत्ते हैं इस कारण प्रयत्न करके जड़ की रक्षा करनी चाहिये, जड़ कट जाने पर न शाखा रहेगी न पत्ते ॥ १३ ॥

माता च कमला देवी पितादेवो जनार्दनः ।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ।१४।

दोहा-लक्ष्मी देवी मातु है, पिता विष्णु सर्वेश ।
कृष्ण भक्त बन्धू सभी, तीन भुवन निज देश ॥१४॥

जिसकी लक्ष्मी माता, विष्णु भगवान पिता और विष्णुके भक्तही बांधव हैं उसको तीनों लोक स्वदेशही है ॥ १४ ॥

एकवृक्ष समारूढा नाना वर्णा विहंगमाः ।
प्रभाते दिक्षुदशसु का तत्र परिवेदना ॥ १५ ॥

दोहा-बहु विधि पक्षी एक तरु, जो बैठे निशि आय ॥
भोर दशो दिशि उड़ि चले, कह कोही पछिताय ॥ १५ ॥

नाना प्रकार के पखेरू एक वृक्षपर बैठते हैं और प्रभात समय दश दिशाओं में उड़जाते हैं उसमें क्या सोच है ॥ १५ ॥

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो बलम् ।
बनेसिंहोमदोन्मत्तः शशकेननिपातितः ॥१६॥

दोहा—बुद्धि जासु है सो बलि, निर्बुधहिं बल नाहिं ।
अति बल सिंहहिं स्यार लघु, चतुर हतेसि वन माहिं ॥१६॥

जिसको बुद्धि है उसी को बल है, निर्बुद्धि को बल कहां से होगा देखो बनमें मद से उन्मत सिंह शशक से मारा गया ॥ १६ ॥

का चिंताममजीवने यदिहरिर्विश्वम्भरो गीयत ।
नोचेदर्भकजीवनाय जननी स्तन्यं कथं निः सरेत् ॥
इत्यालोच्यमुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलम् ।
त्वत्पादाम्बुजसेवनेनसततं कालोमया नीयते ॥ १७ ॥

छं०—है नाम हरी को जग पालक मन जीवन शंका क्यों करनी ।
नहीं तो बालक जीवन को स्तनसे पय निस्सरत क्यों जननी ॥
यहीं जान कर बार बार है यदुपति लक्ष्मी पति तेरे ।
चरण कमल के सेवन से दिन बीते जायँ सदा मेरे ॥ १७ ॥

मेरे जीवन में क्या चिंता है यदि हरि विश्वको पालने वाला कहलाता है ऐसा न होतो बच्चे के जीने हेतु माता के स्तन में दूध कैसे बनाते इसको बार बार विचार करके यदुपति हे लक्ष्मी पति ! सदा केवल आपके चरण कमलकी सेवा से मैं समय को बिताता हूँ।

गीर्वाण पाणीषु विशिष्ट बुद्धि—
स्तथापि भाषान्तर लोलुपोहम् ।

यथा सुधायाममरेषु सत्यां--
स्वर्गांगनानामधरासवेरुचिः ॥ १८ ॥

सो०-देव बानि बुद्धि बसे, तऊ और भाषा चहौं ।
यदपि सुधा सुर देश, चहैं अवस शरन अधर रस ॥ १८ ॥

यद्यपि संस्कृतही भाषाही में विशेष ज्ञान है तथापि दूसरी भाषा का भी मैं लोभी हूँ जैसे अमृत के रहते भी देवता की इच्छा स्वर्ग की स्त्रियों के ओष्ट के आसव में रहती है ॥ १८ ॥

अन्नाद्दशगुणं पिष्टं पिष्टाद्दशगुणं पयः ।
पयसोऽष्टगुणं मासं मांसाद्दशगुणं घृतम् ॥१९॥

दोहा-चून दश गुणों अन्न ते, ता दश गुण पय जान ।
पयसे अठगुणो मांस तै, तेहि दश गुण घृत मान ॥१९॥

चाँवल से दश गुणा पिशान में गुण है, पिसान से दश गुणा दूध में दूध से आठगुणा मांस में, मांस से दसगुणा घी में ॥१९॥

शाकेन रोगावर्द्धन्ते पयसो वर्द्धते तनुः ।
घृतेन वर्द्धते वीर्यं मासान्मांस प्रवर्द्धते ॥२०॥

दोहा-रोग बढ़त शाक ते, पय से बढ़त शरीर ।
घृत खाये बीरज बढ़े, मांस मांस गम्भीर ॥ २०॥

शाकसे रोग बढ़ता है, दूधसे शरीर बढ़ता है, घीसे वीर्य बढ़ता है और मांस से मांस बढ़ता है ॥२०॥

इति वृद्धचाणक्ये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥



अथ एकादशोऽध्याय ॥ ११ ॥

दातृत्वं प्रिय वक्तृत्वंमुचितज्ञता ।
अभ्यासेन लभ्यन्ते चत्वारः सहजागुणाः ॥ १ ॥

दोहा—दान शक्ति प्रिय बोलवो, धीरज उचित बिचार ।
ये गुण सीखे ना मिले, स्वाभाविक हैं चार ॥ १ ॥

उदारता, प्रिय बोलना, धीरता उचित का ज्ञान ये अभ्यास से नहीं मिलते ये चारों स्वाभाविक गुण हैं ॥ १ ॥

आत्मावर्ग परित्यज्य परवर्ग समाश्रयेत् ।
स्वयमेव लयंयाति यथाराजन्य धर्म्मतः ॥ २ ॥

दोहा—वर्ग आपनो छोड़िके, गहैं वर्ग जो आन ।
सो आपुइ नशि जात हैं, राज्य अधर्म समान ॥ २ ॥

जो अपनी मंडली छोड़ करके दूसरे वर्णका आश्रय लेता है वह आपही लय होजाता है जैसे राजा के धर्म से ॥ २ ॥

हस्तीस्थूलतनुःसचांकुशवशःकिं हास्तिमात्रोंऽकुशो ।
दीपेप्रज्वलिते प्रणस्यति तमः किं दीपमात्रन्तमः ॥
बज्रणापिहताः पतन्तिगिरयः किं बज्रामात्रन्नगाः ।
तेजोयस्य बिराजतेसबलवान्स्थूलेषुकःप्रत्ययः ॥३॥

सवैया—भारिकरीरह अंकुशके वशके बशकावह, अंकुशभारी करीसों ।
त्यों तम पुञ्जहि नाशत दीपसो दीपकहू अन्धियार सरीसों ॥
बज्रके मारे गिर गिरिहूं कहूं होय भला वह बज्र गिरीसों ।

तेजहै जासु सोइ बलवान कहा विसवास शरीर बड़ोसों ॥३॥

हाथी का स्थूल शरीर है वह भी अंकुश के वश रहता है तो क्या हस्ती के समान अंकुश है ? दीपक के जलने पर अन्धकार आपही नष्ट होजाता है तो क्या दीपके तुल्य तम है ? बिजुली के मारे पर्वत गिर जाते हैं तो क्या बिजुली पर्वत के समान है? जिसमें तेज बिराजमान रहता है वह बलवान गिना जाता है मोटे का कौन विश्वास है ॥

कलौ दश सहस्राणि हरिस्त्यंजति मेदिनीम् ।
तदर्द्धं जाह्नवी तोयं तदर्द्धं ग्राम देवताः ॥ ४ ॥

दोहा-दशहजार बीते बरस, कलिमें तजि हरि देहिं ।
तासु अर्द्ध सुर नदी जल, ग्रामदेव अघि तेहिं ॥ ४ ॥

कलियुग में दशहजार वर्ष के बीतने पर बिष्णु पृथ्वी को छोड़ देते हैं, उसके आधे पर गंगाजी जलको, तिसके आधे बीतने पर ग्राम देवता ग्रामको ॥ ४ ॥

गृहासक्तस्यनो विद्या न दया मांस भोजिनः ।
द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं स्त्रैणस्य न पवित्रतः ॥५॥

दोहा-विद्या गृह आसक्त की, दया मांस जे खाहिं ।
लुब्धहिं सतता होत नहिं, जारहिं शुचिता नाहिं ॥ ५ ॥

गृहमें आसक्त पुरुषों को बिद्या नहीं होती, मांस के अहारी को दया नहीं होती, द्रव्य लोभी को सत्यता नहीं होती और व्यभिचारी को पवित्रता नहीं होती ॥ ५ ॥

न दुर्जनःसाधुदशामुपैति बहुप्रकारैरपिशिक्ष्यमाणः
आमूलसिक्तःपयसाघृतेन ननिम्बवृक्षोमधुरत्वमेति ।६

दोहा-साधुदशा को नहिं लहैं, दुर्जन बहु शिख लाय।
दूध घोवसे सींचये, नींब न तदपि मिठाय॥ ६॥

निश्चय है कि दुर्जन अनेक प्रकार से सिखलाया भी जाय पर उसमें साधुता नहीं आती, दूध और घीसे जड़ नीमका वृक्ष सींचा जाय पर उसमें मधुरता नहीं आती॥ ६॥

अन्तर्गतमलोदुष्टे तीर्थस्नान शतैरपि।
न शुद्ध्यातियथाभाण्डं सुरायादाहितंचयत्॥ ७॥

दोहा-मन मलीन खल तीर्थ में, यदि सौवार नहाहिं।
होय शुद्ध नहिं जिमि सुरा, बासन दीनहु दाहिं॥ ७॥

जिसके हृदय में पाप है वही दुष्ट है वह तीर्थ में सौबार स्नान से भी शुद्ध नहीं होता जैसे मदिरा का पात्र जलाया जाय तो भी शुद्ध नहीं होता॥ ७॥

न वेत्तियो यस्य गुण प्रकर्ष-
संत सदा निन्दतिनात्रचित्रम्।
यथा किरातीकीरकुम्भलब्धां-
मुक्तांपरियज्य विभर्ति गुंजाम्॥ ८॥

चौ० छं०-जो न जानु उत्तमत्व जाहि के गुणगात की।
निन्दतो सो ताहि तो अचर्ज कौन बात की॥
ज्यों किराति हाथिमाथ मोतियां विहाय कै।
घूंघुची पहीनती विभूषलै बनाय कै॥ ८॥

जो जिसके गुणकी परीक्षा नहीं जानता वह निरन्तर उसकी

निन्दा करता है जैसे भिल्लिनी हाथी के मस्तक के मोती को छोड़ घूँघची को पहचानती है ॥ ८ ॥

येतु संवत्सरंपूर्णं नित्यं मौनेन भुञ्जते ।
युगकोटिं सहस्रैत स्वर्गलोके महीयते ॥ ९ ॥

दोहा-जो पूरे इक बरस भर, मौनधर नितखात ।
युग कोटिनके सहसलक, स्वर्ग माहि पुजि जात ॥ ९ ॥

जो वर्ष भर नित्य चुपचाप भोजन करता है वह दसहजार कोटि वर्षतक स्वर्ग लोक में पूजा जाता है ॥ ९ ॥

कामं क्रोध तथा लोभं स्वादु शृंगार कौतुकं ।
अतिनिद्राऽति सेवेच विद्यार्थीह्यष्ट वर्जयेत् ॥१०॥

सोरठा-काम क्रोध अरु स्वाद, लोभ शृङ्गारहिं कौतुकहिं ।
अति सेवन निंद्राहिं, विद्यार्थी आठौ तजै ॥ १० ॥

काम, क्रोध, लोभ, मिठी वस्तु, शृङ्गार, खेल, अति निन्द्रा और अति सेवा इन आठों को विद्यर्थी छोड़ देवे ॥ १० ॥

अकृष्ट फल मूलानि च नवासरतिः सदा ।
कुरुतेऽहरहः श्राद्ध मृषिविप्रः स उच्यते ॥ ११॥

दोहा-बिनु जोते महि मूल फल, खाय रहे बन माहि ।
श्राद्ध करै जो प्रति दिवस, कहिय विप्र ऋषि ताहि ॥ ११ ॥

बिना जाति भूमि से उत्पन्न फल वा मूलको खाकर सदा बनवास और प्रति दिन श्राद्ध करने वाला ब्राह्मण ऋषि कहलाता है११

एकाहारेण सन्तुष्टः षट्कर्म निरतः सदा ।
ऋतुकालेऽभिगामीच स विप्रो द्विजउच्यते ॥१२॥

सोरठा-एकैवार अहार, तुष्टसदा षट्कर्मरत ।
ऋतुमें प्रिया विहार, करै बिनसो द्विज अहै ॥ १२ ॥

एक समय के भोजन से संतुष्ट रह कर पढ़ाना पढ़ना, यज्ञ करना कराना, दान देना और लेना इन छः कर्मों में सदा रत हो और ऋतु काल में स्त्री का संग करे ऐसे ब्राह्मण को द्विज कहते हैं ॥ १२ ॥

लौकिके कर्म्मणि रतः पशुनां परि पालकः ।
वाणिज्य कृषि कर्मायः स विप्रो वैश्यउच्यते ॥१३॥

सोरठा-निरत लोकके कर्म, पशुपालै वानिज करै ।
खेती में मन पर्म, करै विप्र सो वैश्य है ॥ १३ ॥

सांसारिक कर्म से रहित पशुओं का पालन बनियाई और खेती करने वाला ब्राह्मण वैश्य कहलाता है ॥ १३ ॥

लाक्षादितैल नीलानां कौसुम्भ मधु सर्पिषाम् ।
विक्रता मद्य मांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते॥१४॥

सोरठा-लाख आदि मद मांसु, घीव कुसुम अरु नील मधु ।
तेल वेचियत तासु, शूद्र जानिये विप्र यदि ॥ १४ ॥

लाह आदि पदार्थ, तेल, नील, कुसुम, मधु, घी, मद्य, और मांस वेचने वाला ब्राह्मण शूद्र कहा जाता है ॥ १४ ॥

परकार्य्य विहन्ता च दाम्भिका स्वार्थ साधकः ।
छली द्वेषी मृदु क्रूरा विप्रोमार्जारा उच्यते ॥१५॥

सोरठा-दंभी स्वारथ सूर, पर कारज घालै छली ।
द्वेषी कोमल क्रूर, विप्र विलार कहावते ॥ १५ ॥

दूसरे के काम को बिगाड़ने वाला, दम्भी अपनाही कार्य कराने

वाला, छली, द्वेषी, ऊपर मृदु और अन्तःकरण में क्रूर हो वह ब्राह्मण बिलार कहा जाता है ॥ १५ ॥

वापी कूप तड़ागाना माराम सुरवेश्मनाम्।
उच्छेदने निराशंकः स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥१६॥

सोरठा—कूप बावली बाग, औ तड़ाग सुरमन्दिरहि ।
नाशे में भय त्याग, म्लेच्छ कहावे विप्र सो ॥ १६ ॥

बावली, कुआं, तालाब, वाटिका, देवालयादिकके उच्छेदन करने में जो निडर हो वह ब्राह्मण म्लेच्छ कहलाता है ॥ १६ ॥

देव द्रव्यं गुरु द्रव्यं परदाराभिमर्षणम् ।
निर्वाहः सर्व भूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ॥१७॥

सोरठा—पर नारी रत जोय, जो सुरु गुरु धन को हरैं ।
द्विज चंडाल सो होय, सबमें करु निर्वाह जो ॥ १७ ॥

देवता का द्रव्य और गुरु का द्रव्य जो हरता है और पर स्त्री से संग करता है और सब प्राणियों में निर्बाह कर लेता है वह विप्र चाण्डाल कहाता है अर्थात् (चड़ी कोपे) इस धातु से चाण्डाल पद साधु होता है ॥ १७ ॥

देयं भोज्यधनंधनं सुकृतिभिर्नोसंचयस्तस्य वै ।
श्रीकर्णस्य बलेश्चविक्रमपतेरद्यापिकीर्तिःस्थिता ॥
अस्माकं मधुदानभोगरहितं नष्टं चिरात्सञ्चितं ।
निर्वाणादितिनष्टपादयुगलंघर्षंत्यहोमक्षिकाः ॥१८॥

स०—गतिमानको चाहियकी धन भोज संचहि नाहि दियोई करैं ।

ते बलि विक्रम कर्णहु कीरति आजुलो कह्योई करैं ॥
चिर संचि मधू हमलोगन को बिनु भोग दिये नसिबोई करैं ।
यह जानि गये मधुनाशदोऊमधुमाखियांपांव घिसाई करैं॥१८॥
सुकृतियों को चाहिये कि भोग योग्य धन और द्रव्य को देवे उसका संचय कभी न करे श्रीकर्ण, बलि, विक्रमादित्य इन राजाओं की कीर्ति इस समय पर्यन्त वर्त्तमान है दान भोग से रहित दिन से संचित हमारे लोगों का मधु नष्ट हो गया निश्चय है कि मधुमक्खियां मधु के नाश होने के कारण दोनों पाँवों को घिसा करती है ॥१८॥

इति एकदशोऽध्यायः ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

सानन्दंसदनं सुतास्तु सुधियः कांताप्रियालापिनी।
इच्छापूर्तिधनंस्वयोषितिरतिः स्वाज्ञापराः सेवका ॥
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानंगृहे ।
साधोः संगमुपासतेच सततं धन्योगृहस्थाश्रमः ।१।

स०—सानंद मन्दिर पण्डित पुत्र सुबोल रहै पुनि प्राण पिआरी।
इच्छित संतति और स्वतीय रती रहै सेवक भौंह निहारी ॥
आतिथ औ शिव पूजन रोज रहे घर संच सुअन्न औवारी ।
साधुन संग उपासत है नित धन्य अहै गृह आश्रम धारी ॥१॥
यदि आनन्द युक्त घर मिले और लड़के पण्डित हों स्त्री मधुर भाषिणी हो इच्छा के अनुसार धनहो अपनीही स्त्री में रतिहो आज्ञा पालक सेवक मिले अथिति की सेवा हो और शिव की पूजा होती जाय प्रतिदिन गृही में मीठा अन्न और जल मिले सर्वदा साधु के संग की उपासना हो तो गृहस्थाश्रम ही धन्य है ॥ १ ॥

आर्तेषुविप्रेषुदयान्वितश्चच्छ्रद्धयास्वल्पमुपैतिदानम्।
अनंतपारंसमुपैतिराजन्यद्दीयतेतन्नलभेद्द्विजेभ्यः।२।

दोहा–दियो दयायुत साधुसों, आरत विप्रहिं जौन ।
थोरी मिलै अनन्त ह्वै, द्विज से मिलै न तौन ॥ २ ॥

जो दयावान पुरुष आर्त ब्राह्मणों को श्रद्धा से थोड़ा भी दान देता है उस पुरुष को अनन्त होकर वह मिलता है जो दिया जाता है वह ब्राह्मणों से नहीं मिलता ॥ २ ॥

दाक्षिण्यंस्वजनेदयापरजने शाठ्यंसदादुर्जने ।
प्रीतिःसाधुजनेस्मयः खलजने विद्वज्जनेचार्जवम् ॥
शौर्यंशत्रुजनेक्षमागुरुजने नारीजनेधूर्त्तता ।
इत्थंयेपुरुषःकलासुकुशलास्तेष्वेवलोकस्थितिः ॥३॥

कवित्त–इच्छता स्वजन बीच दया परजन बीच शठता सदा ही रहे बीच दुरजन के।प्रीति साधुजन में खल माहि अभिमान सरल स्वभाव रहे बीच पंडितजन के॥ शत्रुन में शूरता सयानन में क्षमा पूर धुरताई राखे फेरि बीच नारि जन के ॥ ऐसे सब कला में कुशल रहै जेते लोग लोक थिति रहि रहे बीचि तिनहिन के ॥ ३ ॥

अपने जनमें उदारता, दूसरे जनमें दया, सदा दुर्जनमें दुष्टता साधु जन में प्रीति, खलमें अभिमान, विद्वानों में सरलता, शत्रु जन में शूरता, बड़े लोगों के विषय में क्षमा, स्त्री से कामपड़ने पर धूर्तता इस प्रकार से जो लोग कला में कुशल होते हैं उन्हीं में लोक की मर्यादा रहती है ॥ ३ ॥

हस्तौदानविवर्जितौश्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ ।
नेत्रेसाधुविलोकनेनरहिते पादौनतीर्थंगतौ ॥
अन्यायार्जित वित्तपूर्णमुदरं गर्वेणतुंगंशिरो ।
रे रेजम्बूक मुञ्चमुञ्चसहसा नीचंसुनिन्द्यंवपु ॥४॥

ह०छ०—यह पाणि दान विहीन कान पुराण वेद सुने नहीं ।
अरु आंखि साधुन दर्शहीन न पांव तीरथमें कहीं ॥
अन्याय बितभरो सुपेट उठ्यो सिरो अभिमानहीं ।
बपु नीच निंदित छोड़ु छोड़ु अरे सियार सो बेगहीं ॥ ४ ॥

हाथ दान रहित है, कान वेद शास्त्र के विरोधी हैं, नेत्रोंने साधु का दर्शन नहीं किया, पावों ने तीर्थ गमन नहीं किया अन्याय से अर्जित धन से उदर भरा है और गर्व से शिर ऊँचा हो रहा है शियार ऐसे नीच निन्द्य शरीर को शीघ्र छोड़दे ॥ ४ ॥

येषांश्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्तिभक्तिर्नराणां ।
येषांमाभीरकन्याप्रियगुणकथने नानुरक्तारसज्ञा ॥
येषांश्रीकृष्णलीलाललितरसकथा सादरौनैवकर्णौ ।
धिक्तान्धिक्तान्धिगेतांकथयतिसततंकीर्तनस्थोमृदङ्गः ।

छं०—जो नर यशुमतिसुत चरणनमें भक्ति हृदय से कीन नहीं ।
जो राधाप्रिय कृष्णचन्द्रके गुण जिह्वासे नाहिं कहीं ॥
जिनके दोउकाननमाहिं कथारस कृष्णको पीयहु नहीं ।
कीर्तनमाहिं मृदंग इन्हें धिक २ एहिभांति कहेहि कहीं ॥५॥

श्रीयशोदा सुत के पद कमल में जिन लोगों की भक्ति नहीं रहती जिन लोगों का जीभ अहीरों की कन्याओं के प्रियके अर्थात् श्रीकृष्ण

के गुणगान में प्रीति नहिं रखती और श्रीकृष्णजी की लीलाओं की ललित कथाका आदर जिनके कान नहीं करते उन लोगोंको धिक्कार है इन्हीं लोगों को धिक्है ऐसा कीर्तन का मृदंग सदा कहता रहता है

पत्रं नैव यदाकरील विटपे दोषो वसन्तस्य किं।
नालूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किंदूषणं॥
वर्षा नैवपतन्तिचातकमुखे मेघस्य किं दूषणं।
यत्पूर्वंविधिनाललाटलिखितंतन्मार्जितुंकः क्षमः ६

छं०-पात न होय करीलनमें यदि दोष बसंतहि कौन तहां है।
त्यों जब देखि सकै न उलूक दिने तह सूरजदोष कहांहै॥
चातक आनन बून्द परै नहिं मेघन दूषन कौन वहां है।
जो कछु पूरव माथ लिखा विधि मेटनको समरथ्य कहांहै॥६॥

यदि करील के वृक्षमें पत्र नहीं होते तो वसन्त का क्या अपराध है? यदि उल्लूक को दिन में नहीं दीखता तो सूर्य्य का क्या दोष है? वर्षा चातक के मुखमें नहीं पड़ती इसमें मेघ का क्या अपराध है? पहिले ही ब्रह्माने जो कुछ ललाट में लिख रक्खा है उसे मिटाने को कौन समर्थ है॥ ६॥

सत्संगाद् भवति हि साधुता खलानां।
साधूनां न हि खल संगतेः खलत्वम्॥
आमोदं कुसुम भवं मृदेव धत्ते।
मृद्गन्धं नहि कुसुमानिधारयन्ति॥ ७॥

य०ति-सत्संगसों खलन साधु स्वभाव सेवै।

साधू न दुष्टपन संग परेहु लेवै ॥
माटिहि बास कछु फूलन करि पावै ।
माटि सुबास कहु फूल नहिं बसावै ॥ ७ ॥

निश्चय है कि अच्छे के संग से दुर्जनों में साधुता आजाती है परन्तु साधुओं में दुष्टों की संगति से असुधता नहीं आती फूल के गन्ध को मिट्टी ले लेती है परन्तु मिट्टी के गन्ध को फूल कभी धारण नहीं करते ॥ ७ ॥

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थं भूताहि साधवः ।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधु समागमः ॥ ८ ॥

दोहा–साधु दर्शन पुण्य है, साधू तीर्थ के रूप ।
काल पाय तीरथ फलैं, तुरतहिं साधु अनूप ॥ ८ ॥

साधुओं का दर्शनहीं पुण्य है, इस कारण कि साधु तीर्थ रूप हैं समय से तीर्थ फल देता है साधुओं का संग शीघ्र काम देता है ८

विप्रास्मिन्नगरेमहान्कथयस्तालद्रुमाणांगणः ।
को दातारजकोददातिवसनं प्रातर्गृहीत्वानिशि ॥
को दक्षः परवित्तदारहरणे सर्वोऽपि दक्षोजनः ।
कस्माज्जीवसिहेसखेविषकृमिन्यायेनजीवान्यहम् ९

कवित्त–कहो या नगर में महान कौन ? बिप्र ? तौन तारनके वृक्षके
करतार के करतार हैं । दाता कहो कौन हैं रजक देत
सांझ आनि धोय शुभ्र वस्त्र को लेत जो सरकार है ।
दक्ष कहो कौन है ! प्रत्यक्ष सबही है दक्ष हरने को कुश
परायो धनदार है । कैसे तुम जीवत ! बताय कहो मोसो

मात विषकृमिन्याय कर लीजे निरधार हैं ॥ ६ ॥

हे मित्र ! कहो इस नगर में बड़ा कौन है, ताड़ के पेड़ों के समूह कौन दान शील है, धोबी प्रातः काल में वस्त्र लेकर रात्रि में देता है चतुर कौन है, दूसरे के धन और स्त्री क हरने में सबही कुशल हैं कैसे जीते हो ? हे मित्र ! विष का कीड़ा जैसे विषही में जीता है वैसे ही मैं भी जीता हूं। ॥ ९ ॥

न विप्र पादोदक कर्दमानी-
न वेदशास्त्र ध्वनि गर्जितानि ।
स्वाहा स्वधाकार विवर्जितानि-
स्मशान तुल्यानि गृहाणि तानि ॥ १० ॥

दोहा-विप्र चरण के उदय से, हात जहाँ नहिं कोच ।
वेद ध्वनी स्वाहा नहीं, वे गृह मर्घट नीच ॥१० ॥

जिन घरों में ब्राह्मणों के पावों के जलसे कीचड़ न भया हो और न वेद शास्त्र के शब्द की गर्जना और जो गृह स्वाहा स्वधा से रहित हो उसको स्मशान के समान समझना चाहिये ॥ १० ॥

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा ।
शान्ति पत्नीः क्षमा पुत्र षडेते ममबान्धवाः॥ ११॥

सोरठा-सत्य मातु पितु ज्ञान, सखा दया भ्राता धरम ।
तिया शान्ति सुत जान, क्षमा यही षट बन्धु मम ॥ ११ ॥

सत्यता मेरी माता है और ज्ञान मेरा पिता, धर्म मेरा भाई है दया मित्र, शान्ति मेरी स्त्री है और क्षमा पुत्र यही छः मेरे बन्धु हैं ॥ ११ ॥ किसी संसारी पुरुष ने ज्ञानी को देखकर चकित हो पूछा कि संसार में माता पिता भाई मित्र स्त्री पुत्र ये जितने ही अच्छे से

अच्छे हों उतनाही संसार में आनन्द होता है। तुझको परम आनन्द मग्न देखता हूं तो तुझको भी कहीं न कहीं न कोई न कोई उनमें से होगा। ज्ञानी समझा कि जिस दशा को देखकर यह चकित है वह दशा क्या संसारिक कुटुम्बों से हो सकता है ? इस कारण जिनसे मुझे परम आनन्द होता है उन्हीं को इनसे कहूँ कदाचित यह भी इनको स्वीकार करे ॥ ११ ॥

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्य धर्मसंग्रहः ॥१२॥

सोरठा–है अनित्य यह देह, विभव सदा नाहिन रहै ।
निकट मृत्यु नित येह, चहिय कीन्ह संग्रह धरम ॥ १२ ॥

शरीर अनित्य है विभव भी सदा नहीं रहता, मृत्यु सदा निकटही रहती है इस कारण सब धर्म सदा संग्रह करना चाहिये ॥ १२ ॥

निमन्त्रणोत्सवो विप्रो गौवो नव तृणोत्सवाः ।
पत्युत्साहयुता भार्या अहं कृष्ण ! रणोत्सवः ॥१३॥

दोहा–पति उत्सव युवतीनको, गौवनको नवघास ।
नेवतन द्विजको हे हरी, मोहिं उत्सव रणवास ॥ १३ ॥

निमन्त्रण ब्राह्मणोंका उत्सव है, नवीन घास गाइयोंका उत्सव है पतिके उत्साह से स्त्रियों को उत्साह होता है हे कृष्ण ! मुझको रणही उत्सव है ॥ १३ ॥

मातृवत्पर दाराश्च पर द्रव्याणि लोष्टवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पंडितः ॥१४॥

दोहा—परधन माटीके सरिस, परतिय माता भेष ।
आपु सरीखे जगत सब, जो देखे सो देष ॥ १४ ॥

जो दूसरे के स्त्रियों को माता के समान, दूसरे के द्रव्य को ढेला के समान और अपने समान सब प्राणियों को देखता है वह पण्डित है ॥ १४ ॥

धर्मेतत्परतामुखेमधुरता दानेसमुत्साहता ।
मित्रेवंचकतागुरौ विनयता चित्तेऽतिगम्भीरता ॥
आचारेशुचितागुणेरसिकता शास्त्रेषु विज्ञाकृता ।
रूपेसुन्दरताशिवेभजनतात्वय्यस्ति भोराघवः ॥१५॥

कवित्त-धर्म माहि रुचि मुख मीठी बानी दानबचशक्तिमित्रसंगनाहिं ठगनेकी बानि है । वृद्धा माहिं नमूता अरु मनमें गंभीरता शुद्ध हैं आचार गुण विचार बिज्ञान है ॥ शास्त्र का ।विशेष ज्ञान रूप भी सुहावना है शिवजूके भजनका सब का त ध्यान है ॥ कहे पुष्पवंत बानी राघो बीच जानों सब और इकठौर कहि इनको न मान हैं ॥ १५ ॥

धर्ममें तत्परता, मुखमें मधुरता, दान में उत्सुकता, मित्रके विषय में निरछलता, गुरु में नम्रता अन्तः करण में गम्भीरता, आचार में पवित्रता, गुण में रसिकता शास्त्रों में बिशेज्ञता, रूप में सुन्दरता और शिवकी भक्ति हे राघव ! ये सब आपही में है ॥ १५ ॥

काष्टं कल्पतरुःसुमेरुरचलश्चिन्तामणिः प्रस्थरः ।
सूर्यस्तीव्रकरःशशीक्षयकरः क्षारोहि वारांनिधिः ॥
कामोनष्टतनुर्वलिर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगौः ।
नतांस्तेतुलयामि भोरघुपतेः । कस्योपमादीयते १६

कवित्त-कल्पवृक्ष काठ अरु अचल सुमेरु है चिंतामणि न और
जाति जानिये । सूरज में उष्णता अरु कलाहीन चन्द्रमा
सागरहु का जल खारी यह जानिये ॥ कामदेव नष्टतनु
अरु राजा बली दैत्यसुत कामधेनु गौ को भी पशु जानि
मानिये । उपमा श्रीरामजू की रुनसे कछु तुलै ना और
कौन वस्तु जासे उपमा बखानिये ॥ १६ ॥

कल्पवृक्ष काठ है, सुमेर अचल है, चिन्तामणि पत्थर है सूर्यकी किरणें अत्यन्त उष्ण है चन्द्रमा की किरण क्षीण हो जाती है समुद्र खारा है काम को शरीर नहीं है वलि दैत्य है कामधेनु गाय पशुही है इस कारण आपके साथ इनकी तुलना नहीं दे सक्ते हे रघुपति ! फर आपको किसकी उपमा दी जाय ॥ १६ ॥

विद्या मित्रं प्रवासे च भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधिस्थस्यौषधं मित्रं धर्मोमित्रं मृतस्य च १७

दोहा-विद्या मित्र विदेश में, घरमें नारी मित्र ।
रोगिहिं औषधि मित्र है, मरे धर्महि मित्र ॥ १७ ॥

प्रवास में विद्याहित करती है, घरमें स्त्री मित्र है, रोगग्रस्त पुरुष का हित औषध होता है और धर्म मरे का उपकार करता है१७

विनयं राज पुत्रेभ्यः पण्डितेभ्यः सुभाषितम् ।
अनृतं द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेतकैतवम् ॥१८॥

दोहा-राज सुतन से विनय अरु, बुध से सुन्दर बात ।
झूठ जुवारिन से कपट, स्त्री से सीखी जात ॥ १८ ॥

सुशीलता राजा के लड़कों से प्रिय वचन पण्डित से असत्य जुआड़ियों से और छल स्त्रियों सें सीखना चाहिये ॥ १८ ॥

अनालोच्य व्ययं कर्ता अनाथः कलहप्रियः ।
आतुःसर्वः क्षेत्रेषु नरःशीघ्रं विनिश्यति १६

दोहा-बिनु विचार खर्चा करै, झगरे बिनहि सहाय ।
आतुर सब तियमें रहै, सोइ नर वेगि नशाय ॥ १९ ॥

विना विचारे खर्च करने वाला सहायक के न रहने पर कलह में प्रीति रखने वाला और सब जाति की स्त्रियों में भोग के लिये व्याकुल होने वाला पुरुष शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥

न आहारं चिन्तयेत्प्राज्ञा धर्ममेकं हि चिन्तयेत्
आहारो हि मनुष्याणां जन्मना सहजायते॥२०॥

दोहा-नहिं अहार चिन्तहिं सुमति, चिन्तहिं धर्महिं एक ।
होहिं साथहीं जनम के, नरहिं अहार अनेक ॥ २० ॥

पण्डित को अहार की चिन्ता न करनी चाहिये, एक धर्म को निश्चय करके सोचना चाहिये, इस हेतु की अहार मनुष्य को जन्म के साथ ही उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

धन्यधान्य प्रयोगेषु विद्या संग्रहणे तथा ।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखीभवेत् २१

दोहा-लेन देन धन अन्न के, विद्या पढ़ने मांहि ।
भोजन सभा विवाह में, तजै लाज सुख ताहिं ॥ २१ ॥

धन धान्य के व्यवहार करने में वैसे ही विद्या के पढ़ने पढ़ाने में अहार और राजा की सभा में किसी के साथ विवाह करने में जो लज्जा को छोड़ेगा वही सुखी होगा ॥ २१ ॥

जलबिंदु निपातेना क्रमशः पूर्यते घटः ।
स हेतुः सर्व विद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ॥२२॥

दो०—एक एक जल बून्दके, परत घटहु भरि जाय ।
सब विद्या धनधर्मको, कारण यही कहाय ॥ २२ ॥

क्रम २ से जलके एक २ बुन्दके गिरने से घड़ा भर जाता है यही सब विद्या धर्म और धन का भी संग्रह का कारण है ॥ २२ ॥

वयसः परिमाणेऽपि यः खलः खलएवस ।
सम्पक्वमपिमाधुर्यं नोपयातीन्द्रवारुणम् ॥२३॥

दोहा-बीत गये हू उमिर के, खल खलहि रहि जाय ॥
पकहु मिठाई गुण कहूं, नाहिं इनारू पाय ॥ २३ ॥

वयके परिमाण पर भी जो खल रहता है, सो खलही बना रहता है अत्यन्त पको भी इमली कभी मीठी नहीं होती ॥ २३ ॥

इति वृद्ध चाणक्ये द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

--***--

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ॥

मुहूर्त्तमपि जीवेच्च नरः शुक्लेन कर्मणा ।
नकल्पमपिकष्टेन लोकद्वय विरोधिना ॥ १ ॥

दो०-वरु नर जीवैं मुहूर्त्त भर, करिके सुचि सत्कर्म ।
नहिं भरि कल्पहु लोक दुहु, करत बिरोध अधर्म ॥ १ ॥

उत्तम कर्मसे मनुष्यों का मुहूर्त्त भर का जीना भी श्रेष्ठ है दोनों लोकोंके विरोधी दुष्टकर्म से कल्पभर का भी जीना उत्तम नहीं ॥१॥

गतेशोको न कर्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत् ।
वर्त्तमानेन कालेन प्रवर्त्तन्ते विचक्षणाः ॥ २ ॥

दो०—गत वस्तुत शोचै नहीं, गुनै न होनीहार ।
कार्य करहिं परवीन जन, आय परे अनुसार ॥ २ ॥

गतवस्तुका शोक नहीं करना चाहिये और भावीकी चिंता लोग कुशल नहीं करते किन्तु वर्त्तमान कालके अनुरोध से प्रवृत्त होते हैं ॥ २ ॥

स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषः पिता ।
ज्ञातयः स्नानपानाभ्यां वाक्यदानेन पंडिताः ॥३॥

दोहा—देव सत्पुरुष अरु पिता, करहिं सुभाव प्रसाद ।
स्नानपान लहि बन्धु सब, पंडित पाय सुवाद ॥ ३ ॥

निश्चय है कि देवता सत्पुरुष और पिता ये प्रकृति से संतुष्ट होते हैं पर बन्धु स्नान और पानसे और पण्डित प्रिय बचन से॥३॥

आयुः कर्म्मच वित्तञ्च विद्या निधन मेव च ।
पंचैतानि च सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनाः ॥४॥

दोहा—आयुर्बल धन कर्म औ, विद्या मरण गनाय ।
पांचों रहते गर्भमें, जीवन के रचि जाय ॥ ४ ॥

आयु, कर्म, धन, विद्या और मरण ये पांच जब जीव गर्भ में रहता है उसी समय सिरजे जाते हैं ॥ ४ ॥

अहोवत विचित्राणि चरितानिमहात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तृणामयमन्यन्ते तद्भारेणनमन्तिच ॥५॥

दोहा—अचरज चरित विचित्र अति, बड़े जनन के आहिं ॥
जो तृणसम सम्पति मिले, तासु भार नै जाहिं ॥ ५ ॥

आश्चर्य है कि महात्माओं के विचित्र चरित्र हैं लक्ष्मी को तृण सम मानते हैं और यदि मिल जाती है तो उसके भार से नम्र हो जाते हैं । ५ ॥

यस्यस्नेहो भयंतस्य स्नेहो दुःखस्य भाजनम् ।
स्नेहमूलानिदुःखानि तानित्यक्त्वा वसेत्सुखम् ॥६॥

दोहा—जाहि प्रीति भय ताहि को, प्रीति दुःखका पात्र ।
प्रीति मूल दुख त्यागिके, बसै तवै सुखमात्र ॥ ६ ॥

जिसको किसी में प्रीति रहती है उसीको भय होता है, स्नेहही दुःख का भाजन और स्नेहही दुःख का कारण है इसलिये उसे छोड़ कर सुखी होना उचित है ॥ ६ ॥

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥७॥

दोहा-पहिलहि करत उपाय जो, परेहु तुरत जेहि सूझ ।
दुहुनबढ़त सुख मरत जो, होनी गुणत अबूझ ॥ ७ ॥

आनेवाले दुखों का पहिले से उपाय करने वाला और जिसकी बुद्धि में विपत्ति आजाने पर शीघ्रही उपाय भी आजाता हो वे सदा सुखसे बढ़ते हैं और जो सोचता है कि भाग्यवश से जो होनेवाला है अवश्य होगा वह विनष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

राज्ञिधर्म्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः ।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ॥८॥

दोहा—नृप धरमी धरमी प्रजा, पाप पाप मतिजान ।
सम्मत सम भूपति यथा, परगट प्रजा पिछान ॥ ८ ॥

यदि धर्मात्मा राजा हो तो प्रजा भी धर्मिष्ठ, पापी होतो पापी, औ

सम हो तो सम होती है अर्थात् सब प्रकार राजा के अनुसार चलते हैं जैसा राजा हो वैसीही प्रजा भी होती है ॥ ८ ॥

जीवन्तंमृतवन्मन्ये देहिनं धर्मवर्जितम् ।
मृतोधर्मेण संयुक्ता दीर्घजीवी न संशयः ॥९॥

दोहा—जीवत ही समुझै मरेउ, मनुजही धर्म बिहीन ।
नहिं संशय निरजीव सो, मरेहु धर्म जेहिकीन ॥ ९ ॥

धर्म रहित जीते को भी मृतक के समान समझता हूं निश्चय है कि धर्मयुक्त मरा भी पुरुष चिरजीवीहो है ॥ ९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागल स्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥१०॥

दो०—धर्म अर्थ अरु काम अरु, मोक्ष न एकौ जासु ।
अजा कंठ कुचके सरिस, व्यर्थ जन्म है तासु ॥ १० ॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इनमें से जिसको एक भी नहीं रहता बकरी के गलेके स्तन के समान उसका जन्म निरर्थक है ॥ १० ॥

दह्यमानाः सुतीव्रेण नीचाः परयशोऽग्निना ।
अशक्तास्तत्पदंगन्तु ततोनिन्दां प्रकुर्वते ॥११॥

दो०—और अगिन यश दुसह सो, जरि जरि दुर्जन नीच ।
आप न तैसी करि सकैं, तब तिहिं निचहिं बीच ॥ ११ ॥

दुर्जन दूसरे की कीर्ति रूप दुस्सह अग्निसे जलकर उसके पद को नहीं पाते इसलिये उसकी निन्दा करने लगते हैं ॥ ११ ॥

बन्धाय विषयासङ्गं मुक्त्यै निर्विषयम्मनः ।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥१२॥

दो०—विषय संग परिवन्ध करु, विषय हीन निर्बान ।
बंध मोक्ष इन दुहुन को, कारण मनै न आन ॥ १२ ॥

विषयों में आशक्त मन बन्धनका हेतु है विषसे रहित मुक्ति का मनुष्यों के वन्धन और मोक्ष का कारण मनही है ॥ १२ ॥

देहाभिमाने गलिते ज्ञानने परमात्मनः ।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥१३॥

दो०—ब्रह्मज्ञान सो देह को, बिगत भये अभिमान ।
जहां जहां मन जात है, तहां समाधिहिं जान ॥ १३ ॥

परमात्मा के ज्ञानसे देह के अभिमान के नाश हो जाने पर जहाँ जहां मन जाता है वहां समाधिही है ॥ १३ ॥

इप्सितं मनसः सर्वं कस्य सम्पद्यते सुखम् ।
दैवायत्तंयतः सर्वं तस्मात्सन्तोषमाश्रयेत् ॥ १४ ॥

दोहा—इच्छित सबै सुख केहि मिलते, जब सब दैवाधीन ।
यहि ते संतोषहि शरण, चहै चतुर कह कीन ॥ १४ ॥

मनका अभीप्सित सब सुख किसको मिलताहै जिस कारण सब दैवके वश है । इससे संतोष पर भरोसा करना उचित है ॥ १४ ॥

यथाधेनु सहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम् ।
तथा यच्च कृतंकर्म कर्तारमनु गच्छति ॥ १५ ॥

दोहा—जैसे धेनु हजार में, वत्स जाय लखि मात ।
तैसे ही कीन्हों करमें, करतहिके ढिग जात ॥ १५ ॥

जैसे हजारों धेनुके रहते बछरा अपनी माताही के निकट जाता है वैसेही जो कुछ कर्म किया जाता है वह उसके कर्ताको मिलता है।

अनवस्थित कार्यस्य न जने न वने सुखम् ।
जनोदहतिसंसर्गाद्वनं संगविर्वजनात् ॥ १६ ॥

दोहा—अनथिर कारज ते न सुख, जन श्रा बन दुहुं माहिं ।
जन तेहिं दाहैं संगते, वन बिन संगहिं दाहिं ॥ १६ ॥

जिसके कार्यकी स्थिरता नहीं रहती वह न जनमें सुख पाताहै न वनमें, जन उसको संसर्गसे जलाताहै और वनमें सँग के त्यागसे१६

यथा खनित्वा खनित्रेण भूतले वारि विन्दति ।
तथागुरुगताविद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ १७ ॥

दोहा—जिमि खोदत ही तें मिले, भूतलके मधि बारि ।
तैसेही सेवा किये, गुरु विद्या मिल धारि ॥१७॥

जैसे खनवे के साधन से खन के पाताल के जलको पाता है वैसेही गुरुगत बिद्याको सेवा से शिष्य पाता है ॥ १७ ॥

कर्मायत्तं फलंपुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधियश्चार्याः सुविचार्यैव कुर्वते ॥ १८ ॥

दोहा—फल सिधि कर्म अधीन है, बुद्धि कर्म अनुसारि ।
तौहु सुमति महान जन, करम करहिं सु विचारि ॥ १८ ॥

यद्यपि फल पुरुष के कर्मके आधीन रहता है और बुद्धि भी कर्म के अनुसारही चलती है तथापि बिवेकी महात्मा लोग बिचारही के काम करते हैं ॥ १८ ॥

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिवन्दते ।
श्वानयोनिशतंभुक्त्वा चाण्डालेष्वभिजायते॥१६॥

दो० —एक अक्षर बीतहु गुरुहिं, जो नर बन्दे नाहिं ।
जन्म सैकड़ों श्वान ह्वै, जनै चंडालन माहिं ॥ १६ ॥

जो एक अक्षर भी देनेवाले गुरुकी बन्दना नहीं करता वह कुत्ते की सौ योनिको भोगकर चाण्डालों में जन्म लेता है ॥ १६ ॥

युगान्तेप्रचलन्मेरुः कल्पान्ते सप्तसागराः ।
साधवःप्रतिपन्नार्थान्नचलन्तिकदाचन ॥ २० ॥

दोहा—सात सिन्धु कल्पांत चलु, मेरु चलै युग अन्त ।
परे प्रयोजन ते कबहुं, नहिं चलते हैं सन्त ॥ २० ॥

युगके अन्त में सुमेरु भी चलायमान होता है और कल्पके अन्तमें सातों सागर परन्तु साधू लोग स्वीकृत अर्थसे कभी नहीं विचलते॥

पृथिव्यांत्रीणिरत्नानि अन्नमापः सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंख्याविधियते ॥ २१ ॥

म० क०—अन्नवारि चारु बोल, तीनि रत्न भू अमोल ।
मूढ़ लोग वे पषान, टूक रत्न के बखान ॥ २१ ॥

पृथ्वी में जल अन्न और प्रिय बचन ये तीनही रत्न हैं, मूर्खों ने पाषाण के टुकरों को रत्न में गिना है ॥ २१ ॥

इति वृद्धचाणक्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानिदेहिनाम् ।
दारिद्र्यरोग दुःखानि बन्धनव्यसनानिच ॥ १ ॥

म० छ०—निर्धयत्व दुःख रोग । बन्ध और विपत्ति शोक ।
है स्वकर्मवृक्ष जात । ए फलै धरेके गात ॥ १ ॥

जीवों को अपने अपराध रूप वृक्ष से दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन और विपत्ति ये फल होते हैं ॥ १ ॥

पुनर्वित्तम्पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही ।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः ॥ २ ॥

म० छ०–फेरि बित्त फेरि मित्त । फेरि तो धराहु नित्त ।
फेरि फेरि सर्व एह । मानुषी मिलै न देह ॥ २ ॥

धन, मित्र, पृथ्वी ये सब बारम्बार मिलते हैं परन्तु शरीर बारम्बार नहीं मिलती ॥ २ ॥

बहूनां चैवसत्वानां समवायोरिपुञ्जयः ।
वर्षन्धाराधरो मेघस्तृणैरपि निवार्यते ॥ ३ ॥

म० छ०–एक व्है अनेक लोग । वीर्य शत्रु जीत योग ।
मेघ धारि बारि देत, घासे ढेर बारि देत ॥ ३ ॥

निश्चय है कि बहुत जनोंका समुदाय शत्रुको जीत लेता है तृण समूह भी बर्षाकी धाराके धरनेवाले मेघको निवारण करता है॥ ३॥

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि।
प्राज्ञेशास्त्रं स्वयंयाति विस्तारे वस्तुशक्तितः॥४॥

म० छ०–थोर तेल वारि माहि । गुप्तहू खलानि माहि ।
दान शास्त्र पात्र ज्ञानि । ये बढ़ै स्वभाव आनि ॥ ४ ॥

जल में तेल दुर्जन में गुप्त वार्ता सुपात्र में दान बुद्धिमान में शास्त्र ये थोड़ेभी हो तो बस्तु की शक्ति से आपसे आप बिस्तारको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४ ॥

धर्माख्याने श्मशानेच रोगिणां या मतिर्भवेत् ।

सा सर्वदैवतिष्ठेच्चेत्कोन मुच्यते बन्धनात् ॥ ५ ॥

म० छ०-धर्मवारता मशान । रोगमाहिं जौन ज्ञान ।
जो रहै वही सदाइ । बंध को न मुक्त होइ ॥ ५ ॥

धर्म विषयक कथा के समय श्मशान पर और रोगियों को जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह यदि सदा रहती तो कौन संसार बंधन से मुक्त न होता ॥ ५ ॥

उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी ।
तादृशी यदि पूर्वास्यात्कस्यान्महोदयः ॥ ६ ॥

म० छ०-आदि चूकि अंत शोच । जो रहै बिचारि दोष ।
पूर्वहि बनै जो वैस । कौन को मिले न ऐश ॥ ६ ॥

निंदित कर्म के करने के पश्चात् पछताने वाले पुरुषको जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है वैसी यदि पहिले होती तो किसको बड़ी समृद्धि न होती है ॥ ६ ।

दाने तपसि शौर्ये वा विज्ञान विनयं नये ।
विस्मयोनहिकर्तव्यो बहुरत्नावसुन्धरा ॥ ७ ॥

म०छ०-दान नय बिनय नगीच । सुरता बिज्ञान बीच ।
कीजिये अचर्ज नाहिं । रत्न ढेर भूमि माहिं ॥ ७ ॥

दानमें, तपमें, शूरता में विज्ञतामें सुशीलता में और नीतमें बिस्मय नहीं करना चाहिये इसकारण कि पृथ्वी में बहुत रत्न है ॥ ७ ॥

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसिस्थितः ।
यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः ॥८॥

म०छ०-दूरहु बसै नगीच । जासु जौन चित्त बीच ।
जान न जासु चित्त पूर । है समीपहु सो दूर ॥ ८ ॥

जो जिसके हृदयमें रहताहै वह दूर भी हो तो भी वह दूर नहीं जो जिसके मनमें नहीं है वह समीप भी हो तो दूरही है ॥ ८ ॥

यस्माच्चप्रियमिच्छेत तस्य ब्रूयात्सदाप्रियम् ।
व्याधोमृगावधंगन्तुं गीतं गायति सुस्वरम् ॥९॥

म०छं०–जाहिते चहै सुपास, मीठी बोलि तासु पास ।
व्याध मारिबे मृगान, मंत्र गावतो सुगान ॥ ९ ॥

जिसको प्रिय की बाँछा हो सदा उससे प्रिय बोलना उचित है व्याध मृगाके बधके निमित्त मधुर स्वरसे गीत गाता है ॥ ९ ॥

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्थो न फलप्रदाः ।
सेव्यतांमध्यभागेन राजवह्नि गुरुः स्त्रियः ॥१०॥

म०छं०–अतिपास नाशहेत, दूरहू फल देत ।
सेवनीय मध्यभाग । गुरु भूप नारि आग ॥ १० ॥

अत्यन्त निकट रहने पर विनाश के हेतु होते हैं दूर रहने से फल नहीं देते इस हेतु राजा, अग्नि गुरु और स्त्री इनका मध्य अवस्था से सेवना चाहिये ॥ १० ॥

अग्निरापः स्त्रियोमूर्खः सर्पोराजकुलानिच ।
नित्यं यत्नेनसेव्यानि सद्यःप्राणहराणिषट् ॥११॥

म० छं०–अग्नि सर्प मूर्ख नारि । राजवंश और बारि ॥
यत्नसाथ सेवनीय । सद्य ये हरैं छ जीय ॥ ११ ॥

आग, जल, स्त्री, मूर्ख, सर्प और राजाके कुल ये सदा सावधानता से सेवनके योग्य हैं ये छः शीघ्र प्राण के हरने वाले हैं ॥११॥

स जीवति गुणा यस्य यस्य धर्म सजीवति ।

गुणधर्मविहीनस्य जीवितं निस्प्रयोजनम् ॥१२॥

म० छं०—जीवतो गुणी जो होय । या सुधर्मयुक्त जीव ॥
धर्म औ गुणी न जासु । जीवनो सु व्यर्थ तासु ॥ १२ ॥

वही जीता है जिसको गुण है और वही जीता है जिसको धर्म है गुण और धर्मसे हीन पुरुष का जीना व्यर्थ ॥ १२ ॥

यदीच्छसिवशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
पुरोपञ्चदशास्येभ्यो गांचरन्ती निवारय ॥१३॥

म० छं०—चाहते वशै जो कीन । एक कर्म लोक तीन ।
पन्द्रहोके तो मुखान । जानतो बहोरु आन । १३ ॥

जो एकही कर्म्म से जगतको वश किया चाहते हो तो पहिलेपन्द्रहों के मुख से मन गौ को निवारण करो तात्पर्य यह है कि आंख, नाक कान, जीभ, त्वचा ये पांचों ज्ञानेन्द्रियांहैं । मुख,हाथ,पांव,लिंग,गुदा ये पांच कर्मोन्द्रियां हैं। रूप शब्द, रस गंध, स्पर्श ये पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं। इन पन्द्रहोंसे मनरूपी गौको निवारण करना उचितहै ।१३

प्रस्ताव सदृशं वाक्यं प्रभाव सदृशं प्रियम् ।
आत्मशक्तिस मंकोपं योजानातिसपण्डितः ॥१४॥

सो०—प्रिय स्वभाव अनुकूल, योगे प्रसंगै वचन पुनि ।
निज बलके सम तूल, कोप जानु पंडित सोई ॥ १४ ॥

प्रसंग के योग्य वाक्य प्रकृतिके सदृश प्रिय और अपनी शक्तिके अनुसार कोपको जो जानता है वह बुद्धिमान है ॥ १४ ॥

एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षितः ।
कुणपंकामिनीमासं योगिनि कामिभिः श्वभिः॥१५॥

सो०-वस्तु एकहिं होय, तीनि तरह देखी गई।
रति मृत मांसू सोय, कामी योगी कुकुर सो ॥ १५ ॥

एकही देह रूप वस्तु तीन प्रकारकी देख पड़ती है योगी लोग उसे अति निंदित मृतक रूपसे, कामी पुरुष कांता रूपसे और कुत्ते मांस रूपसे देखते हैं ॥ १५ ॥

सुसिद्धमौषधंधर्मं गृहच्छिद्रंच मैथुनम् ।
कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्नप्रकाशयेत् ॥ १६ ॥

सो०-सिद्धौषध औ धर्म, मैथुन कुवचन भोजनौ।
अपने घरका मर्म, चतुर न हिं प्रगटित करैं ॥ १६ ॥

सिद्ध औषधी, धर्म, अपने घरका दोष, मैथुन, कुअन्न का भोजन निन्दित बचन इनका प्रकाश करना बुद्धिमानों को उचित नहीं है ॥१६॥

तावन्मौनेनीयन्ते कोकिलैश्चैववासराः ।
यावन्सर्वंजनानन्ददायिनीवाक्यप्रवर्तते ॥ १७ ॥

सो०-तौलौं मौने ठानि, कोकिलहू दिन काटते।
जौलौं आनंद खानि, सबको बाणी होत है ॥ १७ ॥

जबलों कोकिल मौन साधन में दिन बिताती है तबलों सबजनों को आनन्द देने वाली बाणी प्रारम्भ नहीं होती ॥ १७ ॥

धर्मं धनं च धान्यं च गुरोर्वचनमौषधम् ।
सुगृहीतं च कर्त्तव्यमन्यथा तु न जीवति ॥१८॥

सो०-धर्म धान्य धनवानि, गुरु वच औषध पांच यह।
ग्रहण करै शुभ जानि; भले और विधि नहिं जिव ॥ १८ ॥

धर्म, धन, धान्य, गुरु का बचन और औषध यदि ये सुगृहीते

हो तो इनको भली भाँति से करना चाहिये जो ऐसा नहीं करता वही नहीं जीता ॥ १८ ॥

त्यजदुर्जनसंसर्गं भजसाधुसमागमम् ।
कुरुपुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यतः ॥१६॥

सो०-तजो दुष्ट सहवास, भजो साधु संगम रुचिर ।
करो पुण्य परकास, हरि सुमिरो जग नित्य नहिं ॥ १६ ॥

खलका संग छोड़ साधु के संगति को स्वीकार कर दिन रात पुण्य किया कर और ईश्वर का नित्य स्मरण कर इस कारण कि संसार अनित्य है ॥ १६ ॥

इति वृद्धचाणक्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

यस्य चित्तंद्रवीभूतं कृपया सर्व जन्तुषु ।
यस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटा भस्म लेपनः ॥१॥

दोहा-जासु चित्त सब जन्तु पर, गलित दया रस माह ।
जासु ज्ञान मुक्ती जटा, भस्म लेप कर काह ॥ १ ॥

जिसका चित्त सब प्राणियों पर दया से पिघल जाता है उसको ज्ञान, मोक्ष, जटा और विभूति के लेपन से क्या ? ॥ १ ॥

एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत् ।
पृथिव्यानास्तितद्द्रव्यं यद्दत्त्वाचानृणीभवेत् ॥२॥

दो०—एकौ अक्षर जो गुरु, शिष्यहिं देत जनाय ।
भूमि माहि धन नाहि वह, जो दे अनृण कहाय ॥ २ ॥

गुरु जो शिष्यको एक अक्षर भी उपदेश करते हैं उस निमित्त पृथ्वी में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जिसको देकर शिष्य उससे उत्तीर्ण हो ॥ २ ॥

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
उपानं मुख भंगो वा दूरतैव विसर्जनम् ॥ ३ ॥

दोहा—खल कांटा इन दुहुन को, दोई जगत् उपाय ।
जूतन ते मुख तोड़िवो, रहिबो दूर बचाय ॥ ३ ॥

खल और कांटे इनको दबाने को दोही प्रकार का उपाय है । जूता से मुख को तोड़ना वा दूर से त्याग । ३॥

कुचैलिनंपदंतमलोपधारिंणवह्वाशिनन्निष्ठुरभाषिणंच
सूर्योदयेचास्तमितेशयानंविमुंचतिश्रीर्यदिचक्रपाणिः

दोहा०—वसन दशन राखै मलिन, बहु भोजन कटु वैन ।
सोवै रवि पिछुवत उगत, तजै श्री जो हरि ऐन ॥ ४ ॥

बहुत भोजन करने वाले को दाँतों के मलको दूर न करने वाले को बहुत भोजन करने वाले को कटुवादी को सूर्य के उदय और अस्त के समय में सोने वालों को लक्ष्मी छोड़ देती है चाहे वह विष्णु भी हो तो क्या ॥ ४ ॥

त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीन—
दाराश्च भृत्याश्च सुहज्जनाश्च ।
तंचार्थवन्तं पुनराश्रयन्ते ।
ह्यर्थोहिलोके पुरुषस्य बन्धु ॥ ५ ॥

दोहा—तजहि तिय हित मीत औ, सेवक धन जब नाहिं ।
धन आये बहुरै सबै, धन बन्धु जग माहिं ॥ ५ ॥

मित्र, स्त्री, सेवक और बन्धु ये धनहीन पुरुषों को छोड़ देते हैं वही पुरुष यदि धनी हो जाता है तो फिर उसीका आश्रय करते हैं। अर्थात् धनही लोकमें बन्धु है ॥ ५ ॥

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते एकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥ ॥ ६ ॥

दोहा—करि अनीति जोरेउ धन, दशै वर्ष ठहराय।
ग्यारहवें के लागते, जरा मूलते जाय ॥ ६ ॥

अनीति से अर्जित धन दश वर्ष पर्यन्त ठहरता है ग्यारहवें वर्ष मूल सहित नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

अयुक्तंस्वामिनोयुक्तं युक्तंनीचस्य दूषणम्।
अमृतं राहवे मृत्युर्विषं शंकर भूषणम् ॥७॥

दोहा—खोटो भल समरत्थ पहं, भलो खोट लहि नीच।
विषो भयो भूषण शिवहिं, अमृत राहु कहं मीच ॥ ७ ॥

अयोग्य वस्तु भी समर्थ को योग्य हो जाता है और योग्य भी दुर्जन को दूषण कारक होती है। अमृत ने राहु को मृत्यु दिया और विष शंकर का भूषण हुआ ॥ ७ ॥

तद्भोजनं यद् द्विज भुक्तशेषं-
तत्सौहृदं यत्क्रियते परस्मिन्।
सा प्राज्ञता या न करोति पापं-
दम्भं विना यः क्रियते सद्धर्मः ॥ ८ ॥

दो०-द्विज उबरेउ भोजन सोइ, पर महं मैत्री सोय।
जेहि न पाप वह चतुरता, धर्म दंभ बिनु जोय ॥ ८ ॥

वही भोजन है जो ब्राह्मण के भोजन से बचा है, वही मित्रता है जो दूसरे में की जाती है वही बुद्धिमान है जो पाप नहीं करता और जो बिना दम्भ के किया जाता है वही धर्म है ॥ ८ ॥

मणिर्लुण्ठति पादाग्रे काचः शिरसि धार्यते ।
क्रयविक्रयवेलायां काचःकाचौ मणिर्मणि ॥९॥

दोहा-मणि लोटत रहु पांव तर, कांच रह्यो शिर जाय ।
लेत देत मणि मणि रहे, कांक कांच रहिजाय ॥ ९ ॥

मणि पांवके आगे लोटती हो और कांच शिर भी रक्खा हो परन्तु क्रय विक्रयके समय कांच काँच और मणि मणिही है ॥९॥

अनन्त शास्त्रं बहुलाश्च विद्या-
अल्पश्च कालो बहु विघ्नता च ।
यत्सार भूतं तदुपासनीयं-
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥ १० ॥

दोहा-बहुत विघ्न कम काल है, विद्या शास्त्र अपार ।
जल से जैसे हंस पय, लीजै सार निसार ॥ १० ॥

शास्त्र अनन्त हैं और विद्या बहुत है काल थोड़ा है और विघ्न बहुत है, इस कारण जो सार है उसका लेना उचित है जैसे हंस जल के मध्य से दूध को ले लेता है ॥ १० ।

दूरागतं पथिश्रान्तं वृथा च गृहमागतम् ।
अनर्चयित्वायभुंक्ते स वै चाण्डाल उच्यते ॥११॥

दोहा-दूर देश से राह थकि, बिनु कारज घर आय ।
तेहि बिनु पूजे खाय जो, सो चाण्डाल कहाय ॥ ११ ॥

दूर से आये को, पंथ से थके को और निरर्थक गृहपर आये को बिना पूजे जो खाता है वह चाण्डाल ही गिना जाता है ॥ ११ ॥

पठन्ति चतुरोवेदान् धर्मशास्त्रण्यनेकशः।
आत्मानं नैव जानन्तो दर्वी पाकरसं यथा। ।१२।।

दो०—पढ़े चारहु वेदहूं, धर्मशास्त्र बहु बाद।
आपुहिं जानै नाहिं ज्यों, करछिहि व्यंजन स्वाद ॥ १२ ॥

मूढ़ जैसे चारों वेद और अनेक धर्मशास्त्र पढ़ते हैं परन्तु आत्मा को नहीं जानते, वैसेही कलछी पाक के रसको नहीं पाती ॥ १२ ॥

धन्यांद्विजमयीनौका विपरीता भवार्णवे।
तरन्त्यधोगताःसर्वे उपस्थिताः पतन्त्यधः ।।१३।।

दो०-भवसागर में धन्य है, उलटी यह द्विज नाव।
नीचे रहि तरि जात सब, उपर रहै बुड़िजाव ॥ १३ ॥

यह ब्राह्मण रूप नाव धन्य है, संसार रूप समुद्र में इसकी उलटी ही रीति है इसके नीचे रहने वाले नीचे नहीं गिरते हैं अर्थात् ब्राह्मण से जो नम्र रहता है वह तर जाता है और जो नम्र नहीं रहता वह नर्क में गिरता है ॥ १३ ॥

अयममृतनिधानं नायकोऽप्यौषधीनां--
अमृतमयशरीरः कान्तियुक्तोऽपिचन्द्रः।
भवतिविगतरश्मि मण्डलेप्राप्यभानो--
परसदननिविष्ट कोलघुत्वंनयाति ।।१४।।

दो०-सुधाधाम औषधि पति, छबि युत अमिय शरीर ।
तऊ चंद रबि ढिग मलिन, पर घर कौन गंभीर ॥ १४ ॥

अमृत का घर, औषधियों के अधिपति जिसका शरीर अमृतमय है, और शोभायुत चन्द्रमा भी सूर्यके मंडलमें जाकर निस्तेज हो जाता है, वैसेही दूसरे के घरमें जाकर कौन लघुता को नहीं पाता ॥१४॥

अलिरयंनलिनीदलमध्यगः—
कमलिनीमकरन्दमदालसः ।
विधिवशात्परदेशमुपागतः—
कुटजपुष्परसंवहुमन्यते ॥ १५ ॥

दो०—वह अलि नलिनी पात मधि, तेहि रस मद अलसान ।
परि बिदेश विधिवश कुरै, फूल रसा बहु मान ॥१५॥

यह भँवरा जब कमलिनी के पत्तों के मध्य था तब कमलिनी के फूल के रस से आलसी बना रहता था । अब दैववश से परदेश में आकर कारैयो के फूल को बहुत समझाया ॥ १५ ॥

पीताक्रुद्धेनतातश्चरणतलहतोवल्लभो येनरोषाद् ।
आवाल्याद्विप्रवर्य्यैःस्मरवदनविवरेधार्यते वैरिणीमे ॥
गेहं मेछेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्त ।
तस्मात्खिन्नासदाहंद्विजकुलनिलयंनाथयुक्तंत्यजामि ॥

स०-क्रोधसे तात पिया चरणनसे स्वामी हतो जिन रोषते छाती ॥
बालसे वृद्ध भयेतक मुखमें भारति वैरिणी धारे संघाती ॥
मम जो वास पुष्प वन तोड़न शिवजी की पूजा होत प्रभाती॥
तासे दुःख मान सदैव हरिमें ब्राह्मण कुलको त्यागचिलाती ॥१६॥

जिसने रुष्ट होकर मेरे पिताको पीट डाला और जिसने क्रोधके मारे पाँवसे मेरे कान्तको मारा, जो श्रेष्ठ ब्राह्मण बैठे सदा लड़कपन से लेकर मुख विवरमें मेरी वैरणीको रखते हैं और प्रतिदिन पार्वती के पतिकी पूजा के निमित्त मेरे गृहको काटते हैं हे नाथ! इनसे खेद पाकर ब्राह्मणों के घरको मैं सदा छोड़े रहती हूं ॥ १६ ॥

बन्धनानिखलुसंतिबहूनिप्रेमरज्जुकृतबंधनमन्यत् ।
दारुभेदनिपुणोपिषडंघ्रिःनिष्क्रियोभवतिपंकजकोशे॥

दोहा—बंधन बहुतेरे अहैं, प्रेमबन्ध कछु और ।
काठौ काटन में निपुण, बँध्यो कमल महं भौर ॥ १७ ॥

बन्धन तो बहुत है परन्तु प्रीतिकी रस्सीकी बन्धन औरही है। काठ के छेदने में निपुण भँवराभी कमलके कोशमें निर्व्यापार हो जाता है॥१७॥

छिन्नोपि चंदनतरुर्न जहाति गन्धं ।
वृद्धोऽपिवारणपति र्न जहाति लीलाम् ॥
यन्त्रार्पितो मधुरता न जहाति इक्षुः ।
क्षीणोऽपिनत्यजति शीलगुणान्कुलीनः ॥१८॥

दोहा—काटयो न चन्दन महक तजु, बँध्यो न खेल गजेश ।
ऊंख न पेरेउ मधुरता, शील न सुकुल कलेश ॥ १८ ॥

चन्दन का कटा वृक्ष गन्ध को त्याग नहीं देता, बूढ़ा गजभी रति विलास को नहीं छोड़ता, कोल्हूमें पेरी ऊँखभी मधुरता नहीं छोड़ती, दरिद्र भी कुलीन और सुशीलता आदि गुणों का त्याग नहीं करता ॥१८॥

उर्व्यां कोऽपिमहीधरो लघुतरोदोर्भ्यां धृतोलीलया ।
तेनत्वं दिविभूतले च सततं गोवर्धनो गीतये ॥

त्वां त्रैलोक्यधरं वहामि कुचयो रग्रेन तद्‌गण्यते ।
किंवाकेशवभाषणेनबहुना पुण्यैर्यशोलभ्यते ॥ १६ ॥

स०-कोऊ भूमिके माहि लघू पर्वत कर धारके नाम तुम्हारो पस्लोहै।
भूतल स्वर्ग के बीच सभीने जो गिरवरधारि प्रसिद्ध कियो है ॥
तीन लोक के धारक तुमको धारों सदा कुच ।कौन गिनती है ।
तासे बहु कहना है जो वृथा यशलाभ हरे निजपुण्य मिलती है ॥

पृथ्वी पर किसी अत्यन्त हलके पर्वतको अनायाससे बाहुओं के ऊपर धारण किया तिससे आप स्वर्ग और पृथ्वीतल में सर्वदा गोवर्द्धनधारी कहलाते हैं परन्तु तीनोंलोकों के धरनेवाले आपके समान मैं भी कुचों के अग्र भागको धारण करती हूं, यह कुछ भी नहीं गिना जाता है केशव बहुत कहने से क्या पुण्योंसे ही यश मिलता है ॥१६॥

इति वृद्धचाणक्ये पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

—***—

अथ षोडशोऽध्यायः ॥

नध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये ।
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुः धर्मोऽपिनोपार्जितम् ।
नारीपीनपयोधरोरु युगलं स्वप्नेऽपिनालिंगितं ।
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदकुठारावयम् ॥१॥

क०-कीन नहीं ध्यान हरि पदको जो मुक्ति पददाता शास्त्र बीच में
कह्यो है । स्वर्गका भी द्वारको खोलता है बलसे उस धर्म का
भी संचय नहीं किया है ॥ नारिन के पुष्ट कुच स्वप्न में न देख

ऐसो खोटो जन्म हमहीं को आय मिल्यो हैं। माता के यौवन छेदन कुठार भये यहीं हमारो नाम जगमाहिं तुल्यो है ॥ १ ॥

संसार में मुक्त होने के लिये विधिवत् ईश्वर के पदका ध्यान मुझसे न हुआ स्वर्गद्वार के फाटक तोड़ने में समर्थ धर्मका भी अर्चन न किया और स्त्री के दोनों पीनस्तन और जंघोका आलिंगन स्वप्न में भी न किया अर्थात् मैं माता के युवापन रूप वृक्ष के केवल काटने में कुल्हाड़ी ही हुआ ॥ १ ॥

जल्पान्तिसार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकनोरतिः ॥२॥

दो०-बोले है कोइ और से, चितवत हैं कहिं और ।
मनमें चिन्ता अन्य का, न स्त्री रति इक ठौर ॥ २ ॥

स्त्री भाषण दूसरे के साथ करती है दूसरेको बिलास से देखती है और हृदय में दूसरे ही की चिन्ता करती है अर्थात् स्त्रियों की प्रीति एक में नहीं रहती ॥ २ ॥

यो मोहान्मन्यतेमूढा रक्तेयंमयिकामिंनी ।
स तस्यावशगो भूत्वा नृत्यत्क्रीडाशकुन्तवत् ॥३॥

दो०-जो मूरख ऐसे गिनत, कामिनि का मोहि ध्यान ।
नीचे उसके बस परयो, क्रीड़ा पक्षि समान ॥ ३ ॥

जो मूर्ख अविवेक से समझता है कि यह कामिनी मेरे ऊपर प्रेम करती है वह उसके वश होकर खेल के पक्षी के समान नाचा करता है ॥ ३ ॥

कोऽर्थान्प्राप्यनगर्वितो विषयिणःकस्यापदोऽस्तंगताः
स्त्रीभिःकस्यनखण्डितं भुविमनःकोनामराजप्रियः ।

कः कालस्य न गोचरत्वमगमत् कोऽर्थागतो गोरवः
कावादुर्जनदुर्गुणेषु पतितः क्षेमेण यातःपथिः ॥४॥

स०-धनसे किसका नहिं गर्व भयो किसकामि का दुःख समूहनसा।
किसके मन खंडित नाहिं कियेजग कामिनी राजहिं प्यारकसा॥
को कालके गालमें नाहिं परयो कोउ याचक गौरव मान लसा।
दुर्जन उनके बश में पड़ के सुख मारगमाहिंजा कौन धसा॥४॥

धन पाकर गर्वी कौन न हुआ किस विषयी की विपत्ति नष्ट हुई, पृथ्वी में किसके मनको स्त्रियों ने खण्डित न किया, राजाको प्रिय कौन हुआ, कालके बश कोन नहीं हुआ किस याचक ने गुरुता पाई, दुष्टता में पड़कर संसारके पंथमें कुशलता से कौन पार गया॥ ४ ॥

न निर्मिताकेन न दृष्टपूर्वा न श्रूयतेहेममयी कुरंगी।
तथापितृष्णारघुनंदनस्यविनाशकालेविपरीतबुद्धि।

दो०-रचो न देख्यो नहिं सुन्यो, नाहिं कनक मृग गात ॥
तउ राम तृष्णा स्वमति, नाश काल फिरि जात ॥ ५ ॥

सोने की मृगी न पहिले किसीने रची, न देखी और न किसीको सुन पड़ती है, तौ भी रघुनन्दनको तृष्णा उसपर हुई अर्थात् विनाश के समय बुद्धि विपरीत हो जाती है ॥ ५ ॥

गुणैरुत्तमतो यान्ति नोच्चैरासनसंस्थिताः ।
प्रसादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते ॥६॥

सो०-गुण से पाय बड़ाय, नहिं ऊँचे बैठक टंग ।
बैठि ऊँच घर जाय, कहा काग होवे गरुड़ ॥ ६ ॥

प्राणी गुणों से उत्तमता पाते हैं, ऊँचे आसन पर बैठकर नहीं। कोठेके ऊपर के भाग से बैठा कौवा क्या गरुड़ होजाता है ॥ ६ ॥

गुणा सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि सम्पदः ।
पूर्णेन्दुः किं तथावंद्यो निष्कलंको यथाकृशः ॥७॥

सो०—सब थल गुणहिं पुजाय, नहीं मह तिहूं संपदा ।
वंदि कि तस विधु जाय, पूर क्षीण अकलंक जस ॥ ७ ॥

सर्व स्थानमें गुण पूजे जाते हैं बड़ी सम्पत्ति नहीं पूजी जाती, पूर्णिमा का चन्द्रमा भी क्या वैसा बन्दित होता है जैसा बिना कलंक के द्वितीया का दुर्बल चन्द्र ॥ ७ ॥

परमोक्तगुणो यस्तु निर्गुणोपि गुणोभवेत ।
इन्द्रोपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यातितैर्गुणै ॥८॥

दो०-औरन के वर्णन किये, गुणहु हीन गुणवान ।
इन्द्रौ लघुताई लहै, निजमुख किये बखान ॥ ८ ॥

जिसके गुणों को दूसरे लोग वर्णन करते हैं वह निर्गुणी भी होतो गुणवान कहा जाता है, इन्द्र भी यदि अपने गुणों की आप प्रशंसा करे तो उससे लघुता पाता है ॥ ८ ॥

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणोयान्ति मनोज्ञताम् ।
सुतरांरत्नमाभाति चामीकरनियोजितम् ॥ ९ ॥

दो०-पहुँचा विवेकि पुरुष पहं, अति शोभा गुण पाव ।
धनी रत्न छबि तब कहै, जब लहि कनक जड़ाव ॥ ९ ॥

विवेकी को पाकर गुण भी सुन्दरता पाता है जब रत्न सोने में जड़ा जाता है तब अत्यन्त सुन्दर देख पड़ता है ॥ ९ ॥

गुणःसर्वज्ञ तुल्योऽपि सीदत्येको निराश्रयः ।
अनर्घ्यमपिमाणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥

दो०-गुणसे विष्णु समान हूं, बिनु अवलंबहिं नाहिं ।
होय अमोले मणि तऊ, कनक अलंबहिं चाहि ॥ १० ॥

गुणों से ईश्वर के सदृश भी नीरालम्ब अकेला पुरुष दुःख पाता है। अमोल माणिक्यने भी सोना का अवलंबन किया अर्थात् उसमें जड़े जाने की अपेक्षा करता है ॥ १० ॥

अति क्लेशेन ये अर्था धर्मस्यातिक्रमेणतु ।
शत्रूणां प्रणिपातेन तेह्यर्थमभवंतुमे ॥ ११ ॥

दो०-अति क्लेष करि धर्मतजि, अथवा परि अरि पाव ।
जो मिलतो संपत्ति सो, मेरे पास न आव ॥ ११ ॥

अत्यन्त पीड़ा से, धर्म त्याग से और वैरियों की प्रणति से जो धन होता है सो हे ईश्वर ! मुझको न प्राप्त हो ॥ ११ ॥

किन्ताक्रियते लक्ष्म्या यावधूरिवकेवला ।
यातुवेश्येवसामान्य पथिकेरपिभुज्यते ॥ १२ ॥

दो०-दो सुतिया सम एक रति, तेहि संपति करु काह ।
जो वेश्या सम होय तेहिं, भोगहिं चलतो राह ॥ १२ ॥

उस सम्पत्ति के लोग क्या कर सकते हैं जो धूर के समान असाधारण हैं, जो वेश्याके समान सर्व साधारण हो पथिकों के भी भोग में आ सकती है वह स्त्री किस कामकी ॥ १२॥

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषुचाहारकर्मसु ।
अतृप्ताःप्राणिनस्सर्वे यातायास्यन्तियान्तिच॥१३॥

धन में, जीवन में, स्त्रियों में, और भोजन में, अतृप्त होकर सब प्राणी गये, जायंगे और जाते हैं ॥ १३ ॥

क्षीयन्तेसर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रिया ।
नक्षीयन्ते पात्रदानमभयं यत्तुदेहिनाम् ॥ १४ ॥

दान, यज्ञ, होम, बलि ये सब नष्ट हो जाते हैं, परन्तु सत्पात्र के दिये हुए दान और सब जीवोंका अभयदान ये क्षीण नहीं होते हैं॥

तृणंलघुतृणातूलं तूलादपि च याचकः ।
वायुनाकिंननीतोऽसौ मामयंयाचयिष्यति ॥१५॥

तृण सबसे लघु होता है तृण से रुई हलकी होती है, रुई से भी लघु याचक है, तब इसे वायु क्यों नहीं उड़ा ले जाती ? इस कारण कि वह समझती है कि यह मुझसे भी मांगेगा ॥ १५ ॥

वरंप्राण परित्यागो मान भंगेन जीवनात् ।
प्राणत्यागो क्षणंदुःखमान भंगो दिने दिने ॥१६॥

मान गँवाकर जीने से प्राणका त्याग अच्छा है, कारण कि प्राण हत्यासे केवल क्षणभर का दुःख होता है, और मानके नाश होने पर दिन २ दुःख होता है ॥ १६ ॥

प्रियवाक्याप्रदानेन सर्वेतुष्यन्तिजंतवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं बचने किं दरिद्रता ॥ १७ ॥

मधुर बचन के बोलने से सब जीव संतुष्ट होते हैं इस कारण उसी का बोलना योग्य है, बचन में क्या दरिद्रता है ? ॥ १७ ॥

संसारकूटवृक्षस्य द्वेफले अमृतोपमे ।
सुभाषितं च सुस्वादु संगतिःसज्जनेजने ॥ १८ ॥

संसार रूप कूट वृक्षके दोही फल हैं, रसीला प्रिय बचन और सज्जन के साथ संगति ॥ १८ ॥

जन्मजन्मथनिद्धस्तं दानमध्ययनं तपः ।
तेनैवाभ्यासयोगेन देहीचाभ्यस्तेपुनः ॥ १९ ॥

जो जन्म २ दान, पढ़ना, तप इनका अभ्यास किया जाता है उस अभ्यास के योग से देही उसी अभ्यास को फिर २ कहता रहती है ॥ १९ ॥

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु च यद्धनम् ।
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम् ॥२०॥

जो विद्या पुस्तकहो में रहती और जो धन दूसरे के हाथों में रहता है सो काम पड़जाने पर न वह विद्या है और न वह धन है ॥२०॥

इति वृद्धचाणक्ये षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥



अथ सप्तदशोऽध्यायः ।

पुस्तकंप्रत्ययाधीतं नाधीतंगुरुसन्निधौ ।
सभामध्येनशोभन्ते जारगर्भाइवस्त्रियः ॥ १ ॥

जिन्होंने केवल पुस्तककी प्रतिसे पढ़ा और गुरुके निकट न पढ़ा वे सभा के बीच वैसेही नहीं शोभते जैसे व्यभिचार द्वारा, गर्भवती हुई स्त्रियां ॥ १ ॥

कृतेप्रतिकृतिं कुर्या हिंमने प्रतिहिंसनम् ।
तत्रदोषो न पतति दुष्टेदुष्टं समाचरेत् ॥ २ ॥

उपकार करनेपर प्रत्युपकार करना और मारने पर मारना इसमें अपराध नहीं होता इस कारण कि दुष्टता करने पर दुष्टताकाही आचरण करना उचित होता है ॥ २ ॥

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्चदूरं व्यवस्थितम् ।
तत्सर्वं तपसासाध्यं तपोहि दुरतिक्रमम् ॥३॥

जो दूर है और जो आराधनासे नहीं प्राप्त हो सकता है और जो दूर वर्तमान है, वे सब तपसे सिद्ध हो सकते हैं इस कारण सबसे तप ही प्रबल है ॥ ३ ॥

लोभश्चेदगुणेन किंपिशुनता यद्यस्तिकिंपातकैः ।
सत्यंजत्तपसाचकिंशुचिमनो यद्यस्तितीर्थेनकिम् ॥
सौजन्यं यदिकिंगुणैःसुमहिमायद्यस्तिकिंमण्डनैः ।
सद्विद्यायदि किंधनैरपयशोयद्यन्तिकिंमृत्युना ॥४॥

यदि लोभी है तो दूसरे दोष से क्या ? यदि चतुराई है तो और पापों से क्या ? यदि सज्जनही है तो आपसे क्या ? मन स्वच्छ है तो तीर्थसे क्या ? यदि सज्जनता है तो दूसरे गुणों से क्या ? जो महिमा है तो भूषण से क्या ? यदि अच्छी विद्या है तो धन से क्या ? और यदि अपयश है तो मृत्यु से क्या ।४।

पितारत्नकरोयस्य लक्ष्मी यस्यसहोदरी ।
शंखोभिक्षाटनंकुर्यान्नादत्तमुपतिष्ठते ॥ ५ ॥

जिसका पिता रत्नोंकी खान समुद्र है लक्ष्मी जिनकी बहिन है ऐसा शंख भीख मांगता है, सच है बिना दिये नहीं मिलता ॥५॥

अशक्तस्तुभवेत्साधु ब्रह्मचारीचनिर्धनः ।
व्याधिष्ठोदेवभक्तश्च वृद्धानारीपतिव्रता ॥ ६ ॥

शक्तीहीन साधु होता है, निर्धन ब्रह्मचारी होता है, रोगग्रस्त देवता का भक्त होता है, और वृद्धा स्त्री पतिव्रता होती है ॥ ६ ॥

नान्नोदकं समंदानं नतिथिर्द्वादशी समा ।
न गायत्र्याः परोमंत्रो नमातुर्दैवतंपरम् ॥ ७ ॥

अन्न, जलके समान कोई दान नहीं है न द्वादशीके समान कोई तिथि है और न गायत्री से बढ़कर कोई मंत्र है, न माता से बढ़कर कोई देवता है ।

तक्षकस्य विषंदन्ते मक्षिकाया विषंशिरे ।
वृश्चिकस्य विषंपुच्छे सर्वांगे दुर्जन विषम् ॥८॥

सांप के दाँत में, मक्खी के शिर में और बिच्छू के पूंछ में विष रहता है पर दुर्जन के सब अङ्गों में विषही भरा रहता है ॥ ८ ॥

पत्युराज्ञांविनानारी उपोष्यव्रतचारिणी ।
आयुष्यहरते भर्त्तुः सनारी नरकंव्रजेत् ॥ ९ ॥

पतिकी आज्ञा बिना उपवास व्रत करने वाली स्त्री स्वामी की आयुको हरती है और वह स्त्री घोर नरक में गिर जाती है ॥ ९ ॥

न दानात् शुध्यते नारी नोपवास शतैरपि ।
न तीर्थसेवयातद्वद्भर्तुः पादोदकैर्यथा ॥ १० ॥

स्त्री न तो दानोंसे शुद्ध होती है न सैकड़ों उपवास और तीर्थों के सेवन से जैसी कि स्वामी के चरणोदक से शुद्ध होती है ॥१०॥

पादशेषं पीतशेषं संध्याशेषं तथैव च ॥
श्वानमूत्रं समंतोयं पीत्वाचान्द्रायणं चरेत् ॥११॥

पांव धोने से जो जलका शेष रहता है, जल पीने से जो बच जाता है और सन्ध्या करने पर जो अवशिष्ट जल रहता है सो कुत्ते के मूत्र के समान है इसको पीने से चान्द्रायण व्रत करना चाहिये इसके बिना शुद्धता नहीं होती ॥ ११ ॥

दानेनपाणिर्नतुकंकणेन स्नानेनशुद्धिर्नतुचन्दनेन ।
मानेनतृप्तिर्नतु भोजनेन ज्ञानेनमुक्तिर्नतुमुण्डनेन १२

दानसे हाथ शोभता है, कंकणसे नहीं, स्नान से शरीर शुद्धि होती है चन्दन से नहीं, आदर से तृप्ति होती है भोजन से नहीं ज्ञान से मुक्ति होती है छापा तिलकादि भूषणों से नहीं ॥ १२ ॥

नापितस्य गृहेक्षौरं पाषाणे गन्धलेपनम् ।
आत्मरूपेजलेपश्यन् शक्रस्यापि श्रियंहरेत् ॥१३॥

नाई के घर पर बाल बनाने वाला, पत्थर परसे लेकर चन्दन लगानेवाला, अपने मुख को पानी में देखने वाला इन्द्र भी हो तो उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है ॥ १३ ॥

सद्यः प्रज्ञाहरतुण्डी सद्यः प्रज्ञाकरीवचः ः
सद्यः शक्तिहरानारी सद्यः शक्तिकरं पयः ॥१४॥

कुन्दरू शीघ्र ही बुद्धि हरलेता है और बच झटपट बुद्धि देती है स्त्री तुरन्तही शक्तिहर लेती है, दूध शीघ्रही बलको देता है ॥१४॥

परोपकारणं येषां जागर्ति हृदये सताम् ।
नश्यन्ति विपदस्तेषां संपदः स्युः पदेपदे ॥१५॥

जिन सज्जनों के हृदय में परोपकार जागता है उनकी विपत्ति नष्ट हो जाती है और पद २ में सम्पत्ति होती है ॥ १५ ॥

यदिरामायदिचरमायदितनयोविनयधीगुणोपेताः ।
तनयेतनयोत्पत्तिः सुरवरनगरे किमाधिक्यम् ॥१६॥

यदि कन्या है, यदि लक्ष्मी भी वर्तमान है, यदि पुत्र शुशील गुणों से युक्त है और पुत्रको पुत्रकी भी उत्पत्ति हुई हो तो फिर देवलोक में इससे अधिक क्या है ॥ १६ ॥

आहार निद्रा भय मैथुनानि ।
समानि चेतानि नृणांपशूनाम् ॥
ज्ञानन्नराणामधिकोविशेषो ।
ज्ञानेनहीनाः पशुभिः समानाः ॥१७॥

भोजन, निद्रा, भय, मैथुन ये मनुष्य और पशुओं के समान ही है परन्तु मनुष्यों को केवल ज्ञानही विशेष है ज्ञान से रहित नर पशु के समान है ॥ १७ ॥

दानार्थिनोमधुकरायदिकर्णतालै-
र्दूरीकृताः करिवरेणमदान्धबुद्ध्या ॥

तस्यैवगण्डयुगमण्डनहानिरेषा—
भृंगाःपुनर्विकचपद्मवनेवसन्ति ॥ १८ ॥

यदि मदान्ध गजराज ने राजमद के अर्थी भौंरों के मदान्धता से दूर किया तो यह उसीके दोनों गण्डस्थलकी शोभाकी हानिभई भौंरा तो फिर भी विकसित कमल बनमेंही रहता है ॥ तात्पर्य यह है कि यदि किसी निर्गुण मदान्ध राजा के निकट कोई गुणी जायपड़े तो उस समय मदान्धों ने गुणका आदर न किया मानों अपनी लक्ष्मी की शोभा की हानि किया है क्योंकि काल निरवधि है और पृथ्वी अनन्त है, गुणी का आदर कहीं न कहीं किसी समय में होहीगा ॥ १८ ॥

राजावेश्यामयश्चाग्निश्चौरोबालक याचकः ।
परदुःखन्नजानन्ति अष्टमो ग्रामकण्टकः ॥ १९ ॥

राजा, वेश्या, यम, अग्नि, चोर, बालक, याचक और आठवां ग्राम कण्टक अर्थात् ग्राम निवासियों को पीड़ा देकर अपना निर्वाह करने वाला ये दूसरे के दुःख को नहीं जानते ॥ १९ ॥

अधः पश्यसि किंबाले पतितं तव किं भुवि ।
रे रे मूर्ख न जानासि गत तारुण्य मौक्तिकम् ॥२०॥

दो०—का तिय तू नीच लखति, गिरउ कछु महि बीच ।
तरुणाई मोती गयो, ते नहिं जानत नीच ॥ २० ॥

हे बाले ! नीचेको क्या देखती हो तुम्हारा पृथ्वी पर क्या गिर पड़ा है ! तब स्त्रीने कहा रे रे मूर्ख नहीं जानता कि मेरी तरुणता रूप मोती चली गई उसीको ढूंढ रही हूँ ॥ २० ॥

व्याला श्रयापिविफलापिसकण्टकापि ।
वक्रापिपंकिसहिता न्दुिशसदापि ॥
गन्धेन बंधुरसि केतकिसर्वजन्तो ।
रेकोगुणः खलुनिहंतिसमस्तदोषान् ॥ २१ ॥

सो०-वक्र दुर्लभ अहि बास, विफल पंकजनि कंटकी ।
सकल दोष किय नास, गंध गुण ते केतकि हित ॥ २१ ॥

हे केतकी यद्यपि तू सांपोंका घर है तोभी निष्फल है तुझ में कांटे भी हैं टेढ़ी भी है कीचड़ से तेरी उत्पत्ति है और तू दुःख से मिलती भी है तथापि एक गन्धगुण से सब प्राणियों की बन्धु हो रही है निश्चय है की एक भी गुण सम्पूर्ण दोषको नाश करदेता है ॥२१॥

इति वृद्ध चाणक्यनीति दर्पणे भाषा टीकायां
सप्तदशोऽध्यायः समाप्तः ॥

❀ शुभम् ❀

पुस्तक मिलने का पता--
बाबू बैजनाथप्रसाद बुकसेलर,
बनारस सिटी ।

सत्यनाम प्रेस, बुलानाला बनारस सिटी ।

सूचीपत्र ।

एकादशी महात्म्य भाषा—जिसमें वर्ष की सम्पूर्ण एकाद[illegible] तथा अधिक मासमें आने वाली एकादशियों का भाषा में उलथा किया गया है। [illegible]

कर्म विपाक भा० टी०—पूर्व जन्म का वृतान्त जानना [हो तो] इसे देखें। दा[म]

कवित्त रामायण—सातोकांड रामायणकावर्णन गोस्वामी [तुलसी]दास ने कवित्त में किया है बहुत शुद्धकर छापा गया है। [दाम] [illegible]॥

कोकशास्त्र—पद्मिनी इत्यादि स्त्रियों के लक्षण और पु[रुष] भेद स्त्री सहवास समय तथा विवाह योग्य स्त्रियों का पूरा वर्णन किया गया है। दाम —)

कौवाली बहार बड़ा—इसमें देवी देवताओं पर कौवाली है खूब गाइये। दाम ≡)॥

कुण्डलिया गिरधर दास—गिरधरदास की कुण्डलिया को कौन नहीं पढ़ना चाहता इसमें नाना प्रकारके उपदेश भरे हैं। दाम—)॥

पुस्तक मिलने का पता—

बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर,

राजा दरवाजा, बनारस सिटी।